आलोचना

तीसरे संस्करण की भूमिका ।

इस अति हितकर पुस्तक का दूसरा संस्करण भी, जो दिसम्बर १९२९ ई० में प्रकाशित किया गया था, समाप्त हो चुका है। इसलिए अधिकारी जनों के कल्याण के लिए उसका यह तीसरा संस्करण प्रकाशित किया जाता है।

दूसरे संस्करण की न्याईं हि यह संस्करण छापा गया है। दूसरे संस्करण में परम पूजनीय भगवान् देवात्मा की वर्तमान शिक्षा के अनुसार इस पुस्तक में कहीं २ जो शब्दों में आवश्यक परिवर्तन किया गया था वह वैसे हि रहने दिया गया है।

मुद्रित कर्ता।



चौथे संस्करण की भूमिका ।

इस अति हितकर पुस्तक का तीसरा संस्करण समाप्त होने पर अधिकारी जनों के हित के लिए यह चौथा संस्करण प्रकाशित किया जाता है। आशा है पहले की न्याईं इस पुस्तक के पाठ से भी अधिकारी जन लाभ उठाएंगे।

मुद्रित कर्ता ।



आत्म-कथा

सूची पत्र ।

विषय ।	पृष्ट
१—विषय प्रवेश ।	१
२—जीवन ब्रत ग्रहण ।	२
३—मेरा निराला आत्मा	२५
४—मेरे ब्रत का प्रथम कार्य्य क्षेत्र-भारत वर्ष की प्राचीन फ़िलासफ़ी और वर्तमान अवस्था ।	२७
५—देव धर्म्म की घोषणा और देव समाज स्थापन ।	४३
६—मेरी विरोधिता और मेरा विश्वास ।	४४
७—विरोधिता और उत्पीड़न का महा भयंकर तूफ़ान ।	४९
८—मेरा घोर संग्राम और परिश्रम ।	६९
९—मेरे निराले संग्राम के निराले फल ।	७६
१०—विज्ञान-मूलक धर्म्म तत्वों और साधनों का विकास और प्रचार ।	७९
११—धन्य २ और कृतार्थ बोध ।	८५
१२—अन्तिम अपील और शुभ कामना ।	८९

आत्म-कथा

१—विषय प्रवेश



ज मेरा जन्म दिन है। आज हि के दिन परन्तु आज से सत्तावन वर्ष पहले मेरा जन्म हुआ था। आज हि के दिन परन्तु आज से पच्चीस वर्ष पहले मैंने अपना महा अथवा जीवन व्रत ग्रहण किया था। आज हि मेरी उमर का अट्ठावनवां साल आरम्भ होता है। यह महोत्सव भी मेरे इसी जन्म दिन के उपलक्ष्य में है। और जैसे आज से सत्तावन वर्ष पहले मैं ने २० दिसम्बर और पौषवदि प्रतिपदा को शुक्रवार के दिन जन्म लिया था, वैसे ही सत्तावन वर्ष के बाद आज भी यह पौषवदि प्रतिपदा और २० दिसम्बर और शुक्रवार का हि दिन है। मेरे इस विशेष महोत्सव के दिन, क्या मेरे सुनाने के लिए, और क्या तुम सब के सुनने के लिए मेरी आत्म-कथा से बढ़कर और कोई अनुकूल और प्रिय वस्तु नहीं हो सकती। इसी लिए क्या मैं अपनी और क्या तुम सब की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए, पहले ऐसे हि कितने और वार्षिक अवसरों की न्याईं, आज भी अपनी आत्म-कथा को हि सुनाना चाहता हूं। इस में इतना अन्तर अवश्य होगा, कि इससे पहले मैं इस प्रकार का वर्णन ज़बानी करता रहा

हूं, परन्तु इस बार मेरा रोगी गला, ऊँची आवाज़ के साथ, मुझे इस कदर बोलने की इजाज़त नहीं देता। अतएव इस अवसर के लिए मैंने जो यह ऐड्रेस लिखकर तैयार की है, उसे मेरे एक सेवक मेरी ओर से पढ़ कर सुनाएंगे। ऐसा करने से यद्यपि मेरे ख़ास मुख से तुम इस ऐड्रेस को न सुन सकोगे, और सम्भवतः मैं आप बोल कर अपने शब्दों के द्वारा, अपने जिस कदर आन्तरिक नाना देव भावों को तुम तक अधिक मात्रा में पहुंचा सकता, उसमें कहीं २ अन्तर आ जाएगा, परन्तु यों यह ऐड्रेस, जब कि मेरे हि अपने भावों, और उनके प्रकाश करने वाले शब्दों में रची जा कर लिखी गई है, तब वह शब्द जहां तक मेरी अपनी शक्ति से भर कर निकले हैं, वहां तक कम वा अधिक, वह तुम सब तक ज़रूर मेरे देव प्रभाव पहुंचाएंगे, और तुम कुछ बहुत घाटे में न रहोगे। इसके भिन्न, जब कि ऐसे हि अवसरों की कई बार की ऐड्रेस लिपिबद्ध न होने के कारण, कुछ देर के लिए तुम्हारे दिलों पर अपना २ असर डाल कर ग़ायब हो गई, और फिर क्या तुम्हारे और क्या औरों के काम नहीं आ सकी, और स्थाई चीज़ नहीं बन सकी, तब उनकी तुलना में मेरी यह लिखी हुई ऐड्रेस इस समय तुम सब के लिए, जहां तक सम्भव हो, उच्च प्रभावप्रद होने के भिन्न, आयंदा भी तुम्हारे और अन्य जनों के लिए पाठ और उच्च प्रभाव लाभ करने की चीज़ रह सकती है।

विषय प्रवेश के इन थोड़े से शब्दों के बाद, अब मैं अपनी आत्म-कथा आरम्भ करता हूं।



२—जीवन ब्रत ग्रहण।



पौषवदि प्रतिपदा सम्वत् १९०७ विक्रमी अर्थात

२० दिसम्बर सन् १८५० ई० को, शुक्रवार के दिन प्रातः काल सूर्य्योदय के समय कसबा अकबर पुर जिला कानपुर में मेरा जन्म हुआ। इस पृथ्वी के विकासक्रम में मेरी गर्भजात बहुत बड़ी विशेषता थी। मैं देव जीवन सम्बन्धी जिन निराली और महान शक्तियों को बीजरूप में पा कर आविर्भूत हुआ था, वह मेरी आयु की उन्नति के साथ २ अपने लिए विकासकारी घटनाओं को प्राप्त होकर धीरे २ प्रस्फुटित और उन्नत होने लगीं। सत्य और असत्य हित और अहित विषयक विवेकों की उत्पत्ति के अनन्तर मेरे हृदय में एक ओर सत्य और हित के लिए आकर्षण, और दूसरी ओर असत्य और अहित के प्रति विकर्षण उत्पन्न हुआ। यह आकर्षण और विकर्षण भी क्रम २ से उन्नत होने लगा, और नाना अनुराग और घृणा शक्तियों में परिणत हो गया। बत्तीस वर्ष की आयु से पहले हि मेरे हृदय में सत्य और हित अनुराग विषयक बहुत से अंग विकसित हो चुके थे। इन नाना अनुराग शक्तियों के साथ २ उनकी विरोधी नाना घृणा शक्तियां भी पैदा हो गई थीं। इन सब देव शक्तियों के विकास से मेरा यह देव जीवन अन्य करोड़ों आत्माओं से जो इन शक्तियों से शून्य थे, बिलकुल निराला बन गया था। मैं अपनी इन सब शक्तियों के विचार से उन सब से विशेषता रखता था—मैं उन सब से अलग और एक निराले प्रकार का आत्मा था। यद्यपि मनुष्यों में रह कर मैं उनके साथ अपना उचित सम्बन्ध अवश्य अनुभव करता था परन्तु मैं, अपने देव जीवन की निराली उच्च गतियों के विरुद्ध उनकी नीच गतियों को देखकर अपने हृदय में बहुत आघात और क्लेश पाता था। नीच आत्माओं की यह नीच प्रकृति मुझे बहुत बुरी और घिनौनी मालूम होती थी, और इस लिए किसी आवश्यक

काम काज के भिन्न जहां तक हो, मैं उनकी संगत से परे और उन से दूर २ रहता था।

मैं प्रायः २३ साल की उमर में लाहौर में आगया था। यहाँ पर स्कूल के घंटों में पढ़ाने के कार्य्य के भिन्न मैं अपना और समय अध्ययन और विचार करने, लेख लिखने, सत् उपदेश देने, और अन्य कई प्रकार के हितकर कामों में खर्च किया करता था। गिनती के कुछ जनों के भिन्न मैं प्रायः और नाना प्रकार के लोगों से चाहे वह किसी दर्जे के हों कोई मेल मुलाकात नहीं रखता था और जिन से कुछ वाकफ़ियत थी, उन में से भी अपेक्षाकृत एक दो भले जनों के भिन्न किसी से कुछ अधिक लगाव न था। मेरी प्रकृति कुछ और थी, अन्य नाना लोगों की कुछ और। फिर मेल क्योंकर हो? इस लिए नहीं हुआ। जिन से कभी कुछ मामूली ताल्लुक भी हुआ, वह भी कुछ २ काल के बाद एक वा दूसरे कारण से चला गया।

'ईश्वर' नामक कल्पित पुरुष में मेरा उस समय बहुत गहरा विश्वास था। मैं अपनें इस विश्वास के अनुसार, उसे सत्य, शिव और सुन्दर रूप मान कर उसकी उपासना किया करता था। मुझ में सत्य और हित विषयक जिन अद्वित्तीय अनुरागों का विकास हुआ था, उनके कारण मैं स्वभावतः इस पुरुष का धीरे २ बहुत गहरा अनुरागी अर्थात भक्त बन गया था।

परहित साधन विषयक नाना अनुरागों के विकास से यद्यपि नौकरी के कुछ घंटों के भिन्न मैं अपना कार्य्यगत सब समय नाना परोपकार के कामों में हि ख़र्च करता था, फिर भी धीरे२ मुझ पर इस अनुराग का इतना अधिकार बढ़ गया कि मेरे हृदय में बीच २ में यह प्रेरणा उत्पन्न होती, कि मैं सरकारी नौकरी के बन्धन को तोड़ कर पूर्णतः इसी उपकार

के काम में अपना सारा जीवन भेंट करदूं।

एक बार शायद सन् १८७९ या ८० में मैं अपने घर में मिस मेरी कारपेंटर के उपकार भाव का कुछ हाल पढ़ रहा था। यह मिस इंगलैंड की रहने वाली थीं। इंगलैंड में जो लड़के किसी अपराध में क़ैद होकर जेल में दुष्ट स्वभाव प्राप्त बड़ी उमर के अपराधियों के साथ रखे जाते, उनकी बुरी संगत से उन्हें बहुत हानि पहुंचती थी। लाखों जनों ने कभी इस बुराई को अनुभव न किया, क्योंकि उनके हृदय इस बुराई को अनुभव करने की योग्यता न रखते थे; परन्तु मिस कारपेंटर के विशेष हृदय ने उसे अनुभव किया। उनका हृदय इस बुराई को देख कर बिलबिला उठा, और बहुत ज़ोर से प्रेरणा करने लगा, कि तुम उठो और उसके दूर करने के लिए संग्राम करो। उन्होंने विवश ऐसा ही किया। वर्षों के लगातार संग्राम के बाद उन्हें इस कार्य में सफलता हुई। गवर्नमेन्ट ने उनकी बात को मान लिया। पुराने क़ैदियों के साथ लड़के वा नव युवक क़ैदियों का रक्खा जाना बन्द किया गया। उनके बुरे असरों से उन्हें अलग रखने का प्रबन्ध हो गया।

इंगलैंड में कामयाबी हासिल करने के बाद उन्होंने भारत वर्ष के जेलख़ानों में भी इसी प्रकार के संशोधन के लिए प्रयत्न करना शुरू किया। वह इस अभिप्राय से कई बार इस देश में आई। अन्त में बहुत दिनों के बाद यहाँ पर भी उनका परिश्रम सफल हुआ। कहा जाता है, कि जिन दिनों राजा राममोहनराय अपनी विलायत यात्रा में इन के पिता के घर में ठहरे हुए थे, उन दिनों यह युवा अवस्था में थीं। और इनका सुन्दर हृदय राममोहनराय की ओर इतना आकृष्ट हो गया था, कि वह उनके संग विवाह करने की

पूर्णतः इच्छुक बन चुकी थीं। परन्तु इस बात के मालूम होने पर, कि वह पहले से हि विवाहित और सस्त्रीक है, उनकी यह आकाँक्षा पूरी न हो सकी। इस पर उन्होंने सारी उमर के लिए कुमार व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की, और यह इच्छा की, कि जिस देश के भद्र निवासी से यह विवाह सूत्र में बन्धकर उन के लिए सेवाकारी नहीं बन सकीं, उनके उस देश के लिए हि, जहां तक सम्भव हो, सेवाकारी बनेंगी। इसी शुभ व्रत को ग्रहण करके वह इस देश में कई बार आईं, और इसी शुभ भाव से परिचालित हो कर उन्हों ने लंडन में 'नैशनल इण्डियन ऐसोसिएशन' नामक एक सोसायटी स्थापन की, कि जिसका उद्देश्य भारत की स्त्रियों में विद्या प्रचार और भारत वासियों और यूरोपियन लोगों में मेल जोल पैदा करना था। तब से वह सोसायटी बराबर ज़िन्दा है। भारत में भी उसकी कई शाखाएं हैं, और उसके द्वारा हर साल कुछ न कुछ शुभ काम भी होता रहता है। राम मोहनराय के सम्बन्ध में इस कहानी की कुछ असलियत हो वा कुछ न हो, परन्तु इस कहानी का दूसरा अंश तो बिलकुल सच है। अर्थात मिस कारपेंटर ने परोपकार के सात्विक भाव से परिचालित होकर, जेल के संशोधन के लिए वर्षों तक काम किया है, और उपरोक्त हितकर सभा भी स्थापन की है।

जब उनका वृत्तान्त पढ़ते २, उनके इस परोपकार भाव की सुन्दर छबि, और वह भी मेरे इन्डिया के सम्बन्ध में उनकी सुन्दर छबि, मेरे सन्मुख आई, तब उसी समय मेरा हृदय उछल पड़ा। मैं अपने इस आन्तरिक उच्च भाव के वेग से विवश होकर चिल्ला उठा, और व्याकुल होकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। हैं! विदेशी हृदय मेरे देश की किसी बुराई

को अनुभव करे, वह उसके लिए उछले, वह उसे हज़ारों मीलों का सफ़र करके यहां बार २ आने और परिश्रम करने के लिए मजबूर करे; और खुद इन्डियन, नीच बनते २ और अधोगति प्राप्त होते होते २, अपने हि नाना प्रकार के भले और बुरे से बेसुध रहें। ओह! कैसा हृदय विदारक दृश्य !!

इस दृश्य ने मेरे हृदय में बहुत बड़ा आघात् लगाया। मेरा पर हित अनुराग कुछ और बढ़ गया। तब से मेरे भीतर अपने देश के लिए अपने आप को भेंट करने का भाव कुछ और अधिक हो गया। सन् १८८० ई० के अन्त में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हुई। इस जगत् में मेरी प्रतिज्ञाबद्ध सदा की साथी हमदर्द, दुःख सुख में सहायक और सेवाकारी, मेरी प्रिय पत्नी और मेरी सहधर्म्मिणी का देहान्त हो गया ! कितनी बड़ी हानि !! उच्च जीवन के मुझ निराले और अकेले मुसाफ़िर के लिए एक हि ऐसे साथी और सहाय, धैर्य्य और उत्साह प्रदाता से बिछड़ जाना कैसी दुखदाई और हताश करने वाली घटना !! इस महा भयानक आघात् से कुछ काल के लिए मेरा दिल बहुत दुःखी रहा, परन्तु धीरे धीरे कुछ काल में मेरा यह दुःख चला गया। सन् १८८१ में एक वर्ष की छुट्टी ले कर मैं प्रायः आठ वा नौ महीने लाहौर से बाहर रहा। नवम्बर १८८१ ई० में मैंने दूसरा विवाह किया। विवाह के अनन्तर मैंने फिर नौकरी का काम आरम्भ किया। सन् १८८२ में मेरे हृदय में मेरी देव शक्तियों के कारण फिर वही प्रेरणा आरम्भ हुई। इस प्रेरणा को बढ़ाने वाली अनुकूल घटनाएं पैदा होने लगीं। इस साल मैंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उन में से एक महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित था। उसके पढ़ने से यह प्रेरणा कुछ और भी अधिक

हो गई। इसके प्रबल होने से मेरे हृदय में एक संग्राम उत्पन्न हो गया। एक ओर लोगों की अति पतित कुसंस्कार और पापग्रस्त और महा शोचनीय अवस्था मेरे सन्मुख थी, जिसे देखकर मेरा प्रबल हित भाव मुझे आन्दोलित करके मेरे भीतर यह प्रेरणा करता था कि तुम स्कूल मास्टर रहने के लिए नहीं, किन्तु किसी और महत् काम के लिए हो—दूसरी ओर अन्य कई भाव कार्य करते थे :—

(१) मेरी १५०) महीने की नौकरी थी; और सम्बन्धियों को छोड़कर मेरी पत्नी और मेरे तीन बच्चे थे, कि जिनके भरण पोषण और शिक्षा आदि सब प्रकार के ख़र्च का मुझ अकेले पर ही बोझा था। नौकरी के त्याग करने पर इन का क्या होगा।

(२) आत्म-सन्मान् का भाव बार २ यह कहता था, कि तुम अपने, वा अपने पारिवारिक जनों के लिए किसी से अपने मुँह से कुछ दान भी नहीं माँग सकते।

(३) इस देश में जिस प्रकार के लाखों कहलाने वाले 'साधु' फिरते हैं, उस प्रकार के साधुओं जैसा तुम न कोई उद्देश्य वा लक्ष्य रखते हो, न उनका सा आत्मिक जीवन रखते हो, न उनकी सी दैनिक जीवन यात्रा रखते हो, न उनकी तरह नाना सम्बन्ध और नाना सम्बन्ध-जनित कर्तव्य विहीन अवस्था को धर्म्म समझते हो, न उनका सा शास्त्र विश्वास रखते हो; न उनकी तरह रहना वा कार्य्य करना चाहते हो; ऐसी अवस्था में तुम्हें कौन पूछेगा ? साधारण जन तुम पर कब श्रद्धा करेंगे ?

(४) तुम्हारा धर्म्म मार्ग निराला, तुम्हारा त्याग निराला, तुम्हारा लक्ष्य निराला, तुम्हारा कार्य निराला,

फिर तुम यह सब कुछ निरालापन रखकर अपने देश वासियों से (जो तुम्हें घृणा करेंगे) अच्छे सलूक वा किसी उचित सहाय की क्योंकर आशा कर सकते हो ? तुम्हारी इस निराली गति के कारण कितने हि लोग तो तुम्हारे पहले से हि सख़्त विरोधी बने हुए हैं—अन्य ईश्वरवादियों को छोड़कर तुम्हारी अपनी समाज के कई ईश्वरोपासक तक तुम्हारे विरोधी हैं।

परन्तु पहली प्रेरणा की तुलना में, यह पिछली प्रेरणाएं कुछ बहुत वज़न न रखती थीं; क्योंकि मुझ में सत्य और हित विषयक जो नाना अनुराग विकसित हुए थे उनके विकास के रास्ते में इससे पहले कभी मेरी कोई निम्न शक्ति पूर्णतः रोक नहीं बन सकी—यद्यपि कोई २ विरोधी अवश्य बनी। फिर यह संग्राम किस लिए था ? इसलिए कि मैं इस समय तक भली भान्त यह निर्णय नहीं कर सका था, कि मुझ में जिस आत्म-त्याग का व्रत ग्रहण करने की प्रेरणा होती है वह ज़रूर मेरे उन्हीं ईश्वर की ओर से है कि जिनका मैं पूर्ण भक्त होकर उनके आदेश पालन के लिए बाध्य हूं। इसके भिन्न दो और बहुत बड़ी कठिनाइयाँ थीं—पहली यह कि मैं अपने हृदय के इस संग्राम को किसी और के सन्मुख प्रकाश नहीं कर सकता था, क्योंकि किसी और को इस योग्य नहीं समझता था, कि वह मेरे मार्ग में कुछ रोशनी डाल सकता है—"ओ ख़ेशतन गुम अस्त किरा रहबरी कुनद"—वह खुद गुमराह थे, मेरी रहबरी क्या कर सकते थे ? दूसरी यह कि मैं ईश्वर की दया पर पूर्ण विश्वास करके भी यह समझता था, कि वह जीवों पर साधारण रूप से कृपा करते हैं, परन्तु किसी विशेष जीव को सन्मुख रखकर उस पर कोई विशेष कृपा

नहीं करते; अर्थात् उस समय तक उनकी विशेष कृपा वा "इस्पेशिल प्रोवीडेन्स" के विश्वास ने मुझ पर अधिकार लाभ नहीं किया था। इसलिए मेरे अपने हि दिल में चुप चाप बहुत उधेड़ बुन रहती थी; और उसके अन्दर एक अजीब तूफ़ान जारी था। क्या करूं ? किस तरह फ़ैसला करूं ? किस तरह अपने आन्दोलित हृदय को शान्त करूं ? आख़िरकार इन्हीं दिनों फिर एक और आश्चर्य्य घटना हुई। मेरे पास एक बंगला की पुस्तक थी, जिस में कुछ ईश्वरोपासकों की परस्पर सत्संग विषयक उक्तियां थीं। मेरे भीतर उसके पढ़ने का विचार उठा। मैंने उसे निकालकर पढ़ना आरम्भ किया। उस में ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में कुछ कथोपकथन निकल आया। उसके उस समय के पाठ ने मुझ पर जादू का सा असर किया। इस पाठ से जहां एक ओर ईश्वर की विशेष कृपा के सम्बन्ध में मुझ में विश्वास उत्पन्न हुआ, वहाँ दूसरी ओर इस प्रश्न का कि क्यों कर मालूम हो, कि यह प्रेरणा ईश्वर की ओर से हि है, यह उत्तर मिला, कि ईश्वर की ओर से ऐसी जो प्रेरणा होती है, वह एक वा दो बार हो कर बन्द नहीं हो जाती; किन्तु बार बार होती रहती है। इन दोनों बातों के बाह्यक आकार में अवश्य भयानक भूल थी, परन्तु उनका आन्तरिक भाव अवश्य ठीक था।

"ईश्वर" विषयक विश्वास निश्चय मिथ्या है, और इसीलिए उसकी ओर से किसी प्रेरणा का होना भी अवश्य मिथ्या है परन्तु यह सत्य है कि किसी मनुष्य वा पशु के हृदय में जो भाव वर्तमान हो, उसकी प्रेरणा उसके भीतर अवश्य होती है; और यदि वह भाव भली भान्त प्रबल हो चुका हो, और अन्य किसी भाव से दबा हुआ न हो,

तो वह एक दो बार नहीं, किन्तु बार २ अपनी प्रेरणा करता है। फिर कोई भी उच्च विकासकारी भाव ऐसा नहीं, कि वह किसी आत्मा में प्रबल रूप से वर्तमान हो, और उसके सम्बन्ध में सच्चे वा वफ़ादार रहने के लिए कोई जन सब प्रकार के आवश्यक त्याग के लिए भी तैयार हो, और फिर उसके इस संग्राम, अथवा उच्चगति दायक पथ में विश्व के उस भाग की शक्तियों से सहाय न मिले, कि जो उसका प्रति मुहूर्त विकास साधन कर रही हैं। मेरे साथ नेचर का यही अटल नियम पूरा हुआ। मैं उस समय मनुष्य और विश्व विषयक इन तत्वों को नहीं जानता था, परन्तु वास्तव में विकासार्थी अवश्य था—हाँ पूर्ण विकासार्थी था। इस लिए ईश्वर विषयक मिथ्या विश्वास के समय भी मैंने विकासकारी नेचर से सदा सहाय लाभ की।

अब मैं अपने संग्राम के विषय में साफ़ फ़ैसला करने के योग्य बन गया। मैं अपनी सब निम्न शक्तियों का प्रभु तो था हि, इसलिए जब मैंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया, कि यह प्रेरणा ईश्वर की ओर से है, और वह चाहते हैं, कि मैं सत्य और हित का अनुरागी होकर इस जगत् से असत्य और अहित को नष्ट करने और सत्य और हित का राज्य लाने के लिए अपना समस्त जीवन उनके चरणों में भेंट धर दूं; और वह सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप मेरे इस महा कठिन ब्रत और संग्राम में अपनी विशेष कृपा के द्वारा मेरी सब प्रकार से रक्षा और आवश्यक सहाय करेंगे, तब मुझे क्यों कुछ और सोच विचार करना चाहिए, और क्यों न उनकी शुभ इच्छा के पूर्ण करने के लिए, अपने आपको उनके सन्मुख दीनता पूर्वक समर्पण कर देना चाहिए? इस भाव के उत्पन्न होने

पर मेरा हृदय इस भेंट के लिए भली भान्त तैयार होगया। मेरी सब दुब्धा चली गई। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि अब चाहे कुछ हो, मैं यह व्रत अवश्य ग्रहण करूंगा, और इस फ़ैसले से एक तिल भर पीछे न हटूंगा। मैंने अपनी इस इच्छा का अपनी पत्नी से वर्णन किया। उस ने यद्यपि उसकी महा कठिनाइयां अनुभव कीं, परन्तु उस ने कोई विरोधी भाव प्रकाश नहीं किया, प्रत्युत मेरा सब प्रकार से साथ देने की इच्छा प्रगट की।

दिसम्बर सन् १८८२ ई० में यह फ़ैसला हुआ। इस महीने के शायद दूसरे हफ़्ते के अन्त में लंडन के "मुक्ति फ़ौज" नामक ईसाई सम्प्रदाय के मेजर टक्कर नामक एक अंग्रेज़ प्रचारक अपनी मेम और अपने कुछ और प्रचारकों के साथ लाहौर में आए। उन्होंने "रंग महल" में एक जलसा किया। मैं भी उस में मौजूद था। वहाँ पर अपने धर्म्म के लिए उनके प्रशंसनीय त्याग और उनकी मेम की छोटी सी तक़रीर ने मेरे फ़ैसले को गुप्त रूप से और भी पक्का कर देने में सहाय की।

१५ दिसम्बर का दिन था। मेरे जन्म दिन में केवल पाँच दिन बाक़ी थे। मैंने अपनी नौकरी के सम्बन्ध में अपना त्याग पत्र लिखकर तैयार किया। वह त्याग पत्र यह था :–

To,

THE DIRECTOR,
Public Instruction,
Punjab.

Sir,

Having felt a call from Heaven that my services are required in another sphere of life, I feel my inability to retain my present post, and consequently beg to resign it after serving the Government for the last 14 years.

I shall feel obliged by your accepting this my resignation and issuing early orders to relieve me from the office.

I beg to add with your permission that I shall consider myself as freed from my present duties after 15 days, according to the ordinary rules of Government service, unless I receive instructions from you to the contrary.

I remain Sir,
Your most obedient
servant
S. N. Agnihotri.

LAHORE,
15th December 1882.

(हिन्दी अनुवाद)

पंजाब के शिक्षा विभाग के
डायरेक्टर साहब की सेवा में

महाशय !

ईश्वर की ओर से मैं यह आदेश पाकर कि मुझे जीवन के किसी और विभाग में सेवाकारी बनने की ज़रूरत है, मैं अपनी इस सरकारी नौकरी को, कि जिस में मैंने चौदह साल गुज़ारे हैं, और आयंदा रख नहीं सकता, और इसी

लिए उसे त्याग करता हूं ।

मैं आपका अनुग्रहीत हूंगा; यदि आप मेरा यह त्याग पत्र स्वीकार करके मुझे इस पद से फ़ारग़ करने के लिए शीघ्र आज्ञा देंगे ।

मैं आपकी अनुमति से यह भी निवेदन करना चाहता हूं, कि मैं अपने आपको अपनी इस नौकरी से गवर्नमेंट के साधारण नियम के अनुसार, आज से पन्द्रह दिन के बाद आज़ाद समझूंगा, सिवाय इसके कि आप मुझे इस के विरुद्ध कोई और आज्ञा दें ।

लाहौर
१५ दिसम्बर १८८२ ई०

मैं हूं आपका
बहुत आज्ञाकारी सेवक
एस० एन० अग्निहोत्री

यह त्याग पत्र मैंने मिस्टर स्टेन्स साहब हैडमास्टर के आगे रक्खा । वह उसे पढ़ते हि दंग रह गए । कुछ देर तक चुप रहने के बाद वह बोले :—

Head Master.—I am very sorry that you are going.

I.—I am not sorry in the least.

H.—Have you well considered over the matter ?

I.—Yes.

H.—You have got family and children ?

I.—Yes, a wife and three children.

H.—You have duty towards God as well as towards your wife and children ?

I.—Certainly But I am not going to neglect my duty towards my wife and children.

H.—Will you get any pay?

I.—No. I depend on the Lord. He will provide.

H.—Shall I send on your resignation to-day or put it off for to-morrow?

I.—Please send it on to-day.

H.—Are you decided?

I.—Yes, I am decided about it.

(अर्थ)

हेडमास्टर साहब—मुझे बहुत शोक है, कि आप जाते हैं!

मैं— मुझे तो कुछ भी शोक नहीं है।

हे०—आप ने इस विषय में भली भान्त सोच लिया है?

मैं— जी हां।

हे०—आपकी अपनी पत्नी और बच्चे भी हैं?

मैं— जी हां, एक पत्नी और तीन बच्चे।

हे०—जैसे आपको ईश्वर के सम्बन्ध में कर्त्तव्य साधन की जरूरत है, वैसे हि अपनी पत्नी और अपने बच्चों के पालन के सम्बन्ध में भी?

मैं— बेशक। परन्तु मैं अपनी पत्नी और अपने बच्चों के सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य को त्याग करने का इच्छुक नहीं।

हे०—आपको कहीं से कुछ तनख़्वाह मिलेगी?

मैं— नहीं, मैं ईश्वर पर भरोसा करता हूं। वह मेरी ज़रूरतें पूरी करेंगे।

हे०—क्या मैं आपका इस्तेफ़ा आज हि भेज दूं, वा अभी

कल तक रोक रक्खूं ?

मैं— कृपा कर के आज हि भेज दीजिए।

हे०—क्या आप ने पूरा फ़ैसला कर लिया है ?

मैं— जी हां, मैंने पूरा फ़ैसला कर लिया है।

इधर मैंने इस्तेफ़ा दिया, उधर मेरे ऐसा करने पर लोगों में जगह २ उसका चर्चा शुरू हो गया। चारों ओर से विरोधी मत प्रगट होने लगे। मेरे विशेष देवकोष की शक्तियों से विहीन, आत्मिक उच्च प्रकृति से अन्ध, किसी आत्मिक उच्च और महान् आदर्श की अभिलाषा से शून्य धन, सम्पद्, मान्, प्रशंसा, पद, प्रभुत्व और अन्य तुच्छ सुखों के मुख्य आकांक्षी, और प्रचलित नाना मिथ्या मतों, कुसंस्कारों और कुप्रथाओं आदि के विश्वासी और दास, मेरी इस नई गति की महिमा को कब देख वा समझ सकते थे ? इसलिए ऐसे नाना लोग मेरे सम्बन्ध में अपनी अपनी "दुनयवी दानाई" की बोलियाँ बोलने लगे। ऐसे सभो लोग मेरे विरुद्ध तरह तरह की बातें करने लगे। किसी किसी अपेक्षाकृत अच्छे दिल वाले ने यदि सख़्ती से कुछ न कहा, तो यह कहकर कि "मेरे ख़्याल में ऐसा करना ग़लती में दाख़िल है—ख़ाकसर जब यह इतना बड़ा कुनबा रखते हैं" अपना भाव प्रकाश किया। विरोधियों ने तो खूब फबतियाँ उड़ाई—मुझ पर तरह २ की धोखेबाजी के इलज़ाम लगाए। परन्तु मेरी समाज के एक दो जनों ने यद्यपि किसी उत्साह के साथ मेरा समर्थन नहीं किया तो कोई विरोधी भाव प्रकाश भी नहीं किया। किसी ने जो मेरे प्रति आदर वा सन्मान् का भाव रखता था, मेरी इस क्रिया को नापसन्द करके, सरल भाव से मुझे इस विषय में पत्र लिखा, और कितने हि ऐसे जनों ने जो मुझे

श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, यह इच्छा प्रकाश की, कि यह सब एकत्र होकर एक डेप्यूटेशन के रूप में मुझ से मिलें, और मुझ से इस विषय में बात चीत करें; परन्तु मैं ने उन की इस कामना को स्वीकृत न किया। इस विषय में बाबू चन्द्रनाथ मित्र ने बाबू नवीनचन्द्र राय को जो चिट्ठी भेजी थी, उस में उन्होंने यह लिखा था :–

"My dear Navin Babu,

The para in the Tribune have convinced me that all efforts to make Agnihotri recede will be useless. Yourself and others are of the same opinion. So let us drop the matter.

Sincerely yours,

(Sd.) CHANDRA NATH MITTRA.

18th December 1882."

अर्थ

मेरे प्यारे नवीन बाबू

अख़बार ट्रिब्यून के एक जुमले ने मुझे यह निश्चय करा दिया है. कि अग्निहोत्री जी को अपने इरादे से मोड़ने में सब कोशिशें निष्फल प्रमाणित होंगी। आप और और लोग भी यही राय रखते है। इस लिए ऐसी कोशिश को अब छोड़ देना चाहिए।

१८ दिसम्बर १८८२ ई० आपका सरल भाव से

चन्द्रनाथ मित्र।

मैंने इस्तेफ़ा देने के बाद हि यह इरादा कर लिया था, कि मैं चार दिन के अनन्तर अर्थात् २० दिसम्बर सन् १८८२ ई० को, अपने बत्तीसवें वार्षिक जन्म दिन पर अपने

इस नए व्रत को पबलिक के सामने, एक विशेष अनुष्ठान के द्वारा ग्रहण करूंगा। अख़बार ट्रिब्यून में इसी अनुष्ठान के सम्बन्ध में नोटिस दी गई थी।

इस महाव्रत सम्बन्धी अनुष्ठान की तैयारियां आरम्भ हुई। पंडित नवीनचन्द्रराय ने, जो हिन्दु शास्त्रों के विख्यात वेत्ता थे, मेरे इस अनोखे व्रत विषयक अनुष्ठान के लिए बिलकुल एक नई पद्धति रचकर तैयार की। उन्हों ने अपनी प्रकार के इस निराले अनुष्ठान का नाम "ब्राह्म संन्यास" रक्खा। प्रचलित "हिन्दु संन्यास" से इस का कोई सम्बन्ध नहीं; यह प्रगट करने के लिए उन्हों ने संन्यास शब्द के आगे विशेषता वाचक "ब्राह्म" शब्द नियोजित किया। यह पद्धति छै अंगों में विभक्त थी। :-

(१) आचार
(२) कर्म्म।
(३) त्याग।
(४) ग्रहस्थिति।
(५) धर्म्म पालन।
(६) ब्रह्मयोग।

२० दिसम्बर, बुध का दिन, रात्रि का समय, और ब्रह्म मन्दिर का स्थान, इस अनुष्ठान के लिए नियत किया गया। उपरोक्त समय से पहले २ मन्दिर का हाल भली भान्त सुसज्जित किया गया। मन्दिर का अगला बड़ा भाग पुरुषों के बैठने के लिए और पिछला भाग चिकें डालकर स्त्रियों के बैठने के लिए स्थिर किया गया। सन्ध्या के समय स्कूल से वापिस आकर, मैंने पहले क्षौर कराया, और शिर और दाढ़ी और मूछों के सब बाल मुंडवा दिए। फिर स्नान्

करके मैंने वह गैरिक वस्त्र धारण किए, कि जो इस अवसर के लिए तैयार किए गए थे। फिर अपनी सहधर्म्मिणी और अपने बच्चों के साथ नियत समय से कुछ पहले मैं ब्रह्म मन्दिर में अपने नियत स्थान पर जा बैठा। हाल में मेरे प्रवेश करने से पहले हि दर्शक पुरुष और स्त्रियों का इतना समूह था कि पैर रखने को जगह न मिलती थी। जिन को बैठने की जगह न मिली, वह बरामदों के दर्वाज़ों पर झुंड बान्धे हुए खड़े थे। इस बहुत बड़े समूह में मेरे बहुत से विरोधी परन्तु यों ईश्वर वादी लोग भी वर्तमान थे। और वह वहाँ केवल दुष्टता प्रदर्शन करने और इस महा शुभ कार्य्य में विघ्न डालने के लिए आए थे। इन लोगों ने शोर मचाना और मुँह से सिसकारियां निकालना शुरू किया। इन कहलाने वाले भलेमानसों परन्तु दर असल महादुष्ट आत्माओं की यह इच्छा थी, कि किसी तरह यह अनुष्ठान पूरा न होने पावे। इतने में मैं हठात् उठ खड़ा हुआ और अपने गेरवे वस्त्रों को दिखा कर, और अपने आन्तरिक धर्म्मबल को अपनी बाणी के द्वारा प्रयुक्त करके, मैंने ऐसे लोगों से यह अपील की, कि यदि तुम और कोई मनुष्यता नहीं रखते, तो कम से कम इन वस्त्रों की हि लाज रक्खो, कि जिनका सैंकड़ों वर्षों से तुम्हारे देश में सन्मान् चला आता है। इस अपील ने पूरा काम किया। सारे हाल में सन्नाटा होगया। अनुष्ठान का काम भली भान्त चलने लगा। पण्डित नवीनचन्द्रराय ने ब्रह्म उपासना के अनन्तर अपनी रची हुई नई पद्धति के अनुसार इस अनोखे अनुष्ठान का काम आरम्भ किया। इस अनुष्ठान की कार्य्य प्रणाली इस प्रकार थी :–

कार्य्य प्रणाली

(१) नाम करण।

(२) शास्त्रीय वचनों का अर्थ सहित पाठ।
(३) मन्त्र स्मरण कराना।
(४) अनुष्ठान् परिचालक की ओर से उपदेश।
(५) अनुष्ठान् परिचालक की ओर से प्रार्थना।
(६) भजन।
(७) व्रतधारी का भाव प्रकाश।
(८) व्रतधारी की ओर से प्रार्थना।
(९) भजन।
(१०) परिचालक की ओर से आशीर्वाद।
(११) अन्य जनों की ओर से आशीर्वाद।
(१२) मेम्बरों की ओर से संगीत।

परिचालक ने मुझे अपने समीप आसन पर बिठाकर पहले मुझ से कुछ आवश्यक प्रश्न किए। फिर उनके उत्तर के बाद (मेरी पहली सम्मति के अनुसार) मेरा सत्यानन्द नामक नया नाम रक्खा। उसके अनन्तर उन्हों ने अपनी पद्धति के पूर्व्वोक्त छओं अंगों के सम्बन्ध में अर्थ और कहीं २ व्याख्या सहित कुछ शास्त्रीय श्लोक पाठ किए। फिर मैंने अपने परम लक्ष्य के सम्बन्ध में जो मूल मंत्र ग्रहण किया था और जिसे वह पहले से जानते थे, उसे उन्हों ने इस महा अवसर पर मुझे स्मरण कराया। फिर कुछ संक्षिप्त उपदेश देकर उन्हों ने मेरे इस व्रत में सफल काम होने के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ। उसके अनन्तर मैं खड़ा हुआ और मैंने अपना भाव प्रगट करना आरम्भ किया। जहां तक मुझे याद है, मेरा यह भाव क़रीब २ इस प्रकार का था :–

आज का यह दृश्य बिलकुल निराला है। मेरा व्रत भी पूर्णतः अनोखा है। मैं इस समय अपने आपको इस नए

रूप और नई पोशाक में एक दुल्हन की न्याईं देखता हूं, कि जो इस भरी सभा में, सैंकड़ों जनों के सन्मुख सारी आयु के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर अपने लिए विवाह बन्धन अथवा विवाह-व्रत को ग्रहण करती है। हाँ, आज मैंने अपना एक और परन्तु बिलकुल अनोखा ब्याह रचाया है। एक पतिव्रता और सती स्त्री जिस प्रकार अपने पति के साथ विवाह सूत्र से बन्ध कर, उसे अपने सब सम्बन्धियों से बढ़कर अर्थात् मुख्य सम्बन्धी बनाती है, और अपने जीवन की सब प्रकार की सैंकड़ों अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं में अपने उस मुख्य व्रत से विचलित नहीं होती और दुख और सुख में, विपद् और सम्पद् में, स्वस्थ और रोगावस्था में, समृद्धि और दरिद्रता में, हर्ष और शोक में, जवानी और बुढ़ापे में, सुन्दरता और कदर्य्यता में, भय और प्रलोभन में अपने व्रत में सच्ची रह कर केवल उसी एक को अपने हृदय में सब से बढ़कर स्थान देती है, उसके लिए सदा वफ़ादार रहती है, दिल २ में भी कभी उससे असती वा बेवफ़ा नहीं बनती, उसी प्रकार मैंने आज अपने परम लक्ष्य अर्थात् महा सुन्दर सत्य और शिव वा हित के प्रचार के सम्बन्ध में जो गठजोड़ा किया है, उस के लिए आयु भर अपने जीवन की आन्तरिक और बाह्यक प्रत्येक क्रिया में सच्चा रहूं। मैं अपने इस परम लक्ष्य का पूर्ण अनुरागी होकर जग के उपकार में हि अपनी सारी आयु व्यतीत करूं।

सकल जगत् के सम्बन्ध में उपकार व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए संसार में रहना और मनुष्यों के नाना सम्बन्धों में जहां २ और जिस २ प्रकार का असत्य और अहित अथवा मिथ्या और पाप का राज्य फैला हुआ है,

उसके नष्ट करने के लिए संग्राम करना, और उसके स्थान में सत्य और हित को उत्पन्न और स्थापन करना, एक आवश्यक बात है। इसी लिए इस देश के लाखों स्वार्थ-परायण साधुओं, वैरागियों संन्यासियों और फ़क़ीरों की न्याईं अपने नाना सम्बन्धियों और उनके सम्बन्ध में नाना उचित कर्तव्य कर्म्मों का त्याग मेरा त्याग नहीं; किन्तु मिथ्या और अन्य पाप अनुरागी आत्माओं ने मिथ्या और अन्य पापों के द्वारा जो कुछ घोर नरक फैला रक्खा है, और निकट से निकट के सम्बन्धों को भी परस्पर के लिए नाना प्रकार से हानिकारक बना रक्खा है, और जीवन्त धर्म्म से रहित होकर अधर्म्म को उच्च अधिकार दे रक्खा है, जिस से सब प्रकार के सम्बन्धों में नाना प्रकार का निदारुण दुःख और क्लेश छाया हुआ है, और हाहाकार और आर्तशब्द निकल रहा है, उनके आत्माओं को बदल कर पापावस्था से निकालने, और उन में धर्म्म जीवन उत्पन्न करने के लिए अपने इस महा कठिन ब्रत और महा कठिन संग्राम में मुझे जिस क़दर धन, मान, बड़ाई, इज्ज़त, सुख, आराम, स्वास्थ्य और बल आदि के त्याग करने की आवश्यकता है, वह सब त्याग ग्रहण करना मेरे लिए उचित और विधेय होगा। अपने परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए यही सब प्रकार का पूर्ण त्याग, मेरा सच्चा संन्यास होगा।

मेरे भीतर इस ब्रत के सम्बन्ध में कितने ही काल से बहुत बड़ा संग्राम जारी था। एक ओर मुझे अपने हृदय में ईश्वर की ओर से ऐसा करने की प्रेरणा अनुभव होती थी, और दूसरी ओर मुझे इस गहरे समुद्र में छलांग मारने से मेरी धन सम्बन्धी ज़रूरतें और अन्य आने वाली नाना प्रकार की मुसीबतें अपने आपको पेश करके रोक बनती

थीं। परन्तु आख़िरकार इस संग्राम में मेरी देव शक्तियों की हि जय हुई। महात्मा बुद्ध के जीवन ने भी इस राह में मेरी बहुत सहायता की। मेरा इरादा पक्का हो गया। मैंने यह भली भान्त उपलब्ध किया कि मैं इसी महा व्रत के पूरा करने के लिए प्रगट हुआ हूं। इस तत्व के साफ़ हो जाने पर पिछले शुक्रवार को मैंने नौकरी से इस्तेफ़ा दे दिया, और आज, हृदय के पूर्ण योग और उत्साह और हर्ष के साथ, इस साधारण सभा में अपना जीवन व्रत ग्रहण करता हूं।

आज से इसी महा व्रत को मुख्य रखकर मेरा सब के साथ सम्बन्ध होगा। आज से इसी आत्मिक परम लक्ष्य को सन्मुख रखकर मैं तुम सब लोगों से अपना प्रत्येक सम्बन्ध रक्खूंगा। इसी की सफलता साधन करना मेरे जीवन का मुख्य साधन होगा।

अन्त में मैं अपने जीवन व्रत की सिद्धि में सहाय पाने के निमित्त तुम सब से कुछ २ भिक्षा मांगता हूं। भिक्षा का शब्द सुनकर डर मत जाना। मैं तुम से इस समय आशीर्वाद की भिक्षा चाहता हूं। तुम में से जो नौजवान यहां बैठे हों, वह मुझे अपनी भरी जवानी का उत्साह प्रदान करें; जो बूढ़े हों, और इस उमर में पहुंच कर संसार की किसी एक वा दूसरी बात से उदासीन बन गए हों, वह मुझे अपना यह भाव दान दें; जो बच्चे हों, वह अपना निश्चिन्त भाव प्रदान करें; और जो सती स्त्रियां हों, वह अपना सतीत्व भाव दान दें।

इस भाव प्रकाश ने अधिकांश दिलों को हिला दिया। कितने हि स्त्री और पुरुष रोते और आंसू बहाते थे। इसके अनन्तर मैं ने प्रार्थना की। फिर एक भजन हुआ। फिर

सभा परिचालक और कुछ अन्य जनों ने आशीर्वाद सूचक कामनाएं प्रकाश कीं, जिस के अनन्तर आख़री गीत गाकर यह अलौकिक अनुष्ठान समाप्त हुआ ।

इस्तेफ़ा दे चुकने के बाद से हि मेरे हृदय ने बहुत उच्च प्रभाव लाभ करने शुरू किए । व्रत सम्बन्धी अनुष्ठान के सम्पन्न हो जाने पर मैं बिलकुल एक नए लोक में पहुंच गया । मेरे सब उच्च भाव बहुत सतेज और सबल होगए । मुझ में नई ज्योति प्रकाशित हुई । जैसे एक २ क़ैदी क़ैद की मियाद के ख़तम होने और बेड़ियों के कटने पर, अपने आपको स्वाधीन और सुखी अनुभव करता है, वैसे हि मैंने अपने आपको, न केवल स्वाधीन और सुखी किन्तु उससे सैकड़ों गुणा बढ़कर कृतार्थ बोध किया । एक मछली जो पानी से बाहर किसी सूखी ज़मीन पर पड़ी हो, वह वहां से निकल कर और पानी में प्रवेश करने का अवसर पाकर, अपने आपको जिस प्रकार अनुभव करती है, उसी प्रकार मैंने अपने आपको अनुभव किया । जिस विश्व का विकास-कारी नियम इस शुभ घटना के लाने के लिए, लाखों वर्ष से संग्राम कर रहा था उसके प्रत्येक विभाग ने मानों सहस्त्र सहस्त्र मुख से मुझ पर अपना आशीर्वाद किया । और इस गुप्त परन्तु महान् आशीष को पाकर मेरा हृदय धन्य २ होकर उछलने लगा, और निर्मल और उच्च आनन्द की अपूर्व लहरें लेने लगा । मैंने अनुभव किया, कि अब मेरे जन्म लेने का महान् उद्देश्य, एक सीमा तक सफल हुआ ।

व्रत ग्रहण करने के बाद तीन या चार दिन तक मैं स्कूल में जाता रहा । फिर क्रिस्मस अर्थात बड़े दिन की तक़रीब में सात आठ दिन की छुट्टियां होगईं । जिसके

अनन्तर मेरे बहुत ज़ोर देने पर कुछ दिन में मुझे सरकारी नौकरी से सदा के लिए छुट्टी मिल गई।

३–मेरा निराला आत्मा।

सूर्य्य से प्रसव होकर जब से इस पृथिवी ने अपना पृथक अस्तित्व ग्रहण किया है, तब से इस ने लाखों वर्षों के बहुत लम्बे काल में अपने इस अलग अस्तित्व में परिवर्तन के विश्वव्यापी नियम के अधीन बराबर परिवर्तन लाभ किया है, इन्हीं लाखों वर्षों के अन्तर उसमें जीवनी शक्ति प्रगट होकर धीरे २ उद्भिद् पशु और मनुष्य के असंख्य अस्तित्वों में परिणित हुई है। पूर्व्वोक्त नियम के अनुसार इन अस्तित्वों का कुछ भाग उच्च रूपों और गुणों में और कुछ नीच रूपों और गुणों में परिवर्तित हुआ है। मनुष्य जगत् के जिस विभाग ने अनुकूल घटनाओं में पड़कर उच्च विकास लाभ किया है उसके क्रम विकास में मैंने वह विशेष शक्तियां लाभ कीं, जिनके मिलने से आत्मा की गठन पूर्ण होती है; अर्थात् आत्मा अपनी बनावट में सारे अंगों को प्राप्त होकर पूर्णाङ्ग रूप ग्रहण करता है। बाक़ी मनुष्यों के आत्मा मेरी इन शक्तियों से पूर्णत: ख़ाली हैं।

यह पूर्ण देव शक्तियां यह हैं :–

सत्य विषयक पूर्णाङ्ग अनुराग।
हित विषयक पूर्णाङ्ग अनुराग।
असत्य विषयक पूर्णाङ्ग घृणा।
अहित विषयक पूर्णाङ्ग घृणा।

इन सब शक्तियों को मैं बीज रूप में लेकर उत्पन्न हुआ

था। इसीलिए मेरी गर्भजात् विशेषता थी। मेरी आयु की उन्नति के साथ २ इन शक्तियों ने भी क्रम २ से विकास लाभ किया।

इन के बहुत से अंगों के यथेष्ट रूप में विकसित हो जाने पर मेरे हृदय ने मुझे उपरोक्त जीवन व्रत के ग्रहण करने के लिए मजबूर किया। इन शक्तियों के नाना अंगों के भली भान्त विकसित हो जाने से, मेरी अन्य सब शक्तियां उन के अधीन हो गईं; अर्थात् उन में से कोई मेरे आत्मा की खुद मालिक वा अधिपति न रही—हरएक हि उन में से इन शक्तियों के अधीन और उनकी सेवाकारी बन गई। यही शक्तियाँ देवकोष की शक्तियां हैं। इन्हें पाकर मैंने देवरूप प्राप्त किया।

मेरी इन देव शक्तियों ने विकसित होकर मुझे उसी तरह हिलाना शुरू किया, जिस तरह करोड़ों मनुष्यों और पशुओं को उनकी नीच सुख अनुराग-मूलक नाना शक्तियां हिलाती रहती हैं। इन शक्तियों के अधिकार में आकर

(१) मेरे लिए एक ओर किसी मनुष्य को जान बूझ कर किसी अहित की ओर ले जाना असम्भव हो गया।

दूसरी ओर,

(२) क्या मनुष्यों और क्या उनके भिन्न अन्य अस्तित्वों का जहां तक सम्भव हो, नाना प्रकार से हित वा उपकार करना आवश्यक हो गया।

(३) जीवन विषयक नाना सत्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त रहना, और उन्हें प्राप्त होकर उनका प्रकाश और प्रचार करना आवश्यक हो गया।

(४) सब प्रकार के असत्य-मूलक "धर्म्म" विश्वासों और अहित वा पाप-मूलक आचारों पर आक्रमण करना, और जहाँ तक सम्भव हो, उनके भयानक और महा हानिकारक अधिकार और असरों से आत्माओं और अन्य जीवों आदि का उद्धार करना और ऐसे आत्माओं को समाज बद्ध करके उन में से जिस २ में जहां तक योग्यता वर्तमान हो, उसे उच्च बनाने के लिए संग्राम करना आवश्यक हो गया।

४—मेरे व्रत का प्रथम कार्य क्षेत्र-भारतवर्ष की प्राचीन फ़िलासफ़ी और वर्तमान अवस्था।

पहले पहल मेरे जीवन व्रत का यह अनोखा कार्य्य किन लोगों में आरम्भ हुआ ? भारत के निवासियों में और वह भी अधिकतर हिन्दु जाति में, कि जो जाति नाना कारणों से महा अधोगति की अवस्था में पहुंची हुई थी। इन में से जिस मूल कारण के द्वारा वह इस दुरावस्था को प्राप्त हुई, वह इस की धर्म्म विषयक महा भ्रान्त फ़िलासफ़ी थी, कि जिसने उसके प्रायः सब सम्प्रदायों में अपना रंग चढ़ा लिया है। हिन्दुओं के भिन्न मुसलमानों में भी जिस का असर पहुंचा है। इस फ़िलास्फ़ी का एक अंश यह भी है:—

मनुष्य को अपने भले व बुरे कर्म्मों का फल भोगने

के लिए इस पृथिवी में बार २ जन्म लेना और मरना पड़ता है। पुनः पुनः जन्म लेना और मरना और संसार के बन्धनों में पड़कर दुःख पाना कदापि वांछनीय नहीं। सब प्रकार के भले और बुरे कर्म्म मनुष्य के लिए बन्धन का हेतु हैं; इसी लिए पुनर्जन्म अथवा आवागवन से मुक्ति पाने के लिए क्या भले और क्या बुरे, सब कर्म्मों के बन्धनों का त्याग आवश्यक है।

इस फ़िलासफ़ी का दूसरा अंश यह है।

मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से निर्वृत्ति और केवल सुख चाहता है। संसार में नाना प्रकार के सम्बन्धों को रखकर नाना प्रकार के दुःख पाना आवश्यक है। इसी लिए सुखार्थी मनुष्य को चाहिए, कि वह अपने सब प्रकार के साँसारिक सम्बन्धों को त्याग करें। किसी सम्बन्ध में कोई कर्तव्य कर्म्म वा फर्ज़ पूरा न करे। हरएक फर्ज़ वा कर्तव्य कर्म्म को छोड़ के सब सम्बन्धों से बेपरवाह होजाए। माँ, बाप, भाई, बहिन, स्त्री, बच्चे, स्वामी, भृत्य, मित्र, शत्रु, दरिद्र, धनी, दुःखिया, असहाय, मूर्ख, विद्वान् स्वजातीय और स्वदेशीय जन, आदि सब प्रकार के मनुष्यों और अन्य जीवों से उदासीन होकर सब को सम दृष्टि से देखे, और केवल अपने सुख के लिए जिए और उसी को मुख्य रखे-अपने हि में इस सुख के पाने के निमित्त योग और समाधि विषयक विविध साधन करे। इस योग साधन से आवागवन से भी मुक्ति हो जाती है। दोनों अंशों में औरों के सम्बन्ध में सब कर्तव्य कर्म्मों का त्याग अति आवश्यक है। औरों के भले और बुरे से कोई सम्बन्ध न रखना आवश्यक है।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी जो इस देश में वेदान्त वा योग

फ़िलासफ़ी के बहुत बड़े और अति विख्यात प्रचारक हुए हैं, अपने मोहमुद्गर में कहते हैं :—

शत्रौ, मित्रे, पुत्रे, बन्धौ,
माकुरु यत्नं निग्रह सन्धौ;
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं,
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् । ९

अर्थ—शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धु आदि किसी के झगड़े वा सुलह से कोई काम न रक्खो; यदि शीघ्र विष्णुपद की बांछा हो, तो इन सब से विरत होकर समचित्त हो जाओ।

अर्थमनर्थं भावमनित्यं,
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्;
पुत्रारपि धनभाजाँ भीतिः,
सर्वत्रैषा विहिता रीतिः । १३

अर्थ—धन को बुराइयों का मूल जानो, उस से किसी को लेश मात्र भी सुख नहीं मिलता। यह सब जगत् की रीति है, कि धनी को अपने पुत्र से भी डर रहता है।

इसलिए सब सम्बन्धों और कर्तव्य कर्मों का त्याग करके ऐ सुखार्थियो ! अपने आत्मा में हि अपना सुख ढूंढो।

आप फिर कहते हैं :—

सुरवर मन्दिर तरुतल बासः,
शय्या भूतलमजिनं वासः;
सर्व्व परिग्रह भोगं त्यागः;
कस्य सुखं न करोति विरागः ।

अर्थ—विष्णु मन्दिर के निकट एक बृक्ष के नीचे बास हो, भूमि बिछौना और हिरन की खाल का ओढ़ना हो, संसार के सब सुख त्याग किए गए हों; इस वैराग्य के समान सुख कहां है ?

गीता में लिखा है :—

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते । ३१७

अर्थात्—जो मनुष्य अपने अन्तर आत्मा के हि सुख में सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कार्य्य करना आवश्यक नहीं ।

अत्रि संहिता में कहा गया है :—

कर्तव्यतैव संसारो, न तां पश्यन्ति सूर्यः ।

अर्थात्—कर्तव्य कर्म्मों से हि संसार में फंसना पड़ता है । इसलिए बुद्धिमान लोग कर्तव्य कर्म्मों के बखेड़ों में हि नहीं पड़ते ।

तुलसी दास जी का बचन है :—

जहां काम तहाँ राम नहीं, जहाँ राम नहीं काम;
यह दोनों हि न मिलें, रवि रजनी इक ठाम ।

अर्थ–जैसे सूर्य्य और रात दोनों एक जगह मिलकर नहीं रहते वैसे हि जहां राम को रखना हो, वहां किसी काम को नहीं रख सकते ।

योगी की अवस्था के विषय में यह लिखा है, कि

व्यपारात्खिद्यते यस्तु, निमेषोरमेषयोरपि;
तस्यालस्य धुरीणस्य, सुखं नान्यस्य कस्यचित् ।

अत्रि संहिता ।

अर्थ–जो जन ऐसी सिद्धि की अवस्था में पहुंच जाए, कि वह अपनी हि आंखों के खोलने और बन्द करने में भी दिक्क़त मालूम करे, वह आलस्य परायण महात्मा जो सुख पाता है, वह किसी और को प्राप्त नहीं होता।

फिर मुक्ति प्राप्त आत्मा के सम्बन्ध में लिखा है, कि

मृत्पिड दण्ड लोष्टादि, शिला पट्टक कुटयवत्
वन्हि पुराण।

अर्थ–मुक्त जन वह है, जो पूर्णतः बेसुध हो, और मिट्टी के पिंड लकड़ी के डंडे, कंकर, पत्थर या दीवार का न्यांई हो गया हो।

कैसा महत् आदर्श ! पहले जीवनी शक्ति का खनिज पदार्थों में प्रगट होना, फिर लाखों वर्षों तक विकास-मूलक संग्राम के बाद, उसका उद्भिद् और पशु के नाना आकारों में से उन्नत होते २ और नए से नए बोधों को प्राप्त होते २ मनुष्य के आकार में प्रकाशित होना, और एक काल तक भारत वासियों में भी धीरे २ सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ना और उन्नत होना और फिर भारत की इसी सन्तान में से ऐसे तत्वज्ञानियों अथवा फ़िलासफ़रों का पैदा होना, और उनका उपरोक्त महा भ्रान्त विश्वास के अनुसार मनुष्य के लिए धर्म्म के नाम से नाना उचित कर्म्मों का त्याग करने, और योग समाधि का साधन देके उसे फिर खनिज पदार्थों अर्थात् कंकर पत्थर की अवस्था में पहुंचाने के लिए उपदेश देना और तैयार करना !!

पुर्नजन्म के मिथ्या विश्वास से प्रारब्ध नामक एक और मिथ्या विश्वास की उत्पत्ति हुई। प्रारब्ध का मिथ्या विश्वास क्या ? यह विश्वास, कि मनुष्य वर्तमान काल

में नाना प्रकार के जो २ सुख वा दुःख भोग रहा है, वह उसके पिछले जन्म के कर्म्मों का फल है। इसलिए वह अमिट है। इसी को कई जनों ने भाग्य वा क़िसमत बताया; अर्थात् पैदा करने वाले परमेश्वर ने जिसके ललाट में जो कुछ लिख दिया है, उसे कोई दूर नहीं कर सकता। कहा गया है—

"करम रेख नहीं मिटे, करे कोई लाखों चतुराई"

और भी

"क़िस्मत किया हर एक को क़स्सामे अज़ल ने,
जिस चीज़ के क़ाबिल कोई नासिख़ नज़र आया।"

इस मिथ्या विश्वास के प्रचार ने लोगों को सिवाय लाचारी के उद्यम करने की ओर से और भी उदासीन बना दिया। बुरे से बुरे और हानिकारक से हानिकारक नाना रिवाजों और प्रथाओं का दास रक्खा, और भलाई और उन्नति के पथ पर चलने न दिया।

उपरोक्त मिथ्या विश्वासों के प्रचार से धीरे २ पूर्णतः निकम्मे और अति हानिकारक नाना साधु सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई। इस समय इन नाना साधु कहलाने वाले सम्प्रदायों में छोटे २ लड़कों, जवानों और बूढ़ों को लेकर प्रायः बावनलाख* आदमी शामिल हैं, कि जो केवल यही नहीं कि देशोपकारक वा सामाजिक काम कुछ नहीं करते, किन्तु उलटा अपने खान पान, सैर और सफ़र और अधिकांश जन अपने तरह २ के नशे या अमल के खर्च के लिए करोड़ों रुपया साल का बोझा भी अपने देश वासियों पर डालते हैं।

*अब १९२५ ई० की जन गणना के अनुसार ७५ लाख

और कितने हि जन नाना पापों और एक दूसरे के साथ अप्राकृतिक कर्म्मों के भिन्न सैकड़ों गृहस्थी लोगों के घरों को भी ख़राब करते हैं ।

अच्छा हुआ कि उपनिषद्कार और स्मृतिकार ऋषियों और शंकराचार्य्य जैसे योगियों ने अपनी यह संन्यास शिक्षा स्त्रियों के लिए नहीं रक्खी और मोक्ष का यह धर्म्म स्त्रियों के लिए बन्द रक्खा नहीं तो इस देश के लिए और भी बहुत बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती । फिर भी यह सच है, कि कई सम्प्रदायों में स्त्रियां भी साधनियां बनाई जाती हैं ।

इन साधु सम्प्रदायों को छोड़ कर जो लोग गृहस्थी रहे, उन में से ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों ने, अपने भीतर से भी, एक बहुत बड़ी श्रेणी निकम्मे पुरोहितों की पैदा की । उनके पूर्व्वजों ने सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल आदि प्राकृतिक पदार्थों की अन्तर्गत शक्तियों और उनके भिन्न और नाना कल्पित अस्तित्वों वा स्थूल देह त्यागी नाना अधम आत्माओं को देवताओं वा देवियों के रूप में ग्रहण करके, अपनी साधारण बोलचाल में उनके सम्बन्ध में स्तुति और प्रार्थना आदि सूचक जो छन्द रचे थे और जो अब पुराने होकर "वेद मंत्र" कहलाते हैं, उन्हें अपौरुषेय, और अपने पहले पूर्व्वजों को अभ्रान्त प्रगट करना शुरू किया । और धीरे २ यह संस्कार सारे देश में फैल गया, कि वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् यह किसी मनुष्य की रचना नहीं हैं । इस मिथ्या और महा हानिकारक विश्वास के फैल जाने पर 'पुरोहित श्रेणी' की दुकान भली भान्त स्थापन होगई । इन पुस्तकों के भिन्न धीरे २ स्मृति और पुराण नामक आदि नाना पुस्तकें रचना की गई । इनके

रचने वाले भी ब्राह्मण कहलाने वाली श्रेणी के हि लोग थे। इनके भिन्न प्रायः और सब लोग इन पुस्तकों के हाल से अज्ञानी थे। बस और क्या चाहिए था! जैसे वर्तमान समय में हज़ारों लोग क़ानून से अज्ञानी होकर वकीलों के मुंह की ओर देखते हैं, वैसे हि प्रायः सब हिन्दु इन ब्राह्मण नामधारी परन्तु पुरोहिताई का पेशा रखने वालों के मुँह को श्रद्धा पूर्वक देखने लगे। इस पुरोहित श्रेणी के लोगों ने अपने टके सीधे करने के लिए कितनी ही अवस्थाओं में जान बूझकर और कितनी दशाओं में आप कुसंस्कारों में लिप्त होकर बेसुधि से नाना प्रकार के मिथ्या मतों और कुरीतियों का प्रचार किया। यह महा हानिकारक श्रेणी, बावन लाख साधुओं की तरह, लाखों की संख्या में इस समय में भी लोगों के कुसंस्कारों और उन की मूर्खता का फ़ायदा उठा रही है, और जोंक की न्यांई मूर्ख और कुसंस्कार ग्रस्त लोगों का खून चूस रही है। भोजकी, महा ब्राह्मण, पंडे और गंगा पुत्र आदि नामधारी मनुष्य इसी सम्प्रदाय के मेम्बर हैं।

एक ओर मिथ्या विश्वासों और संस्कारों और नीच अनुरागों और नीच घृणाओं के महा हानिकारक अधिकार से, और दूसरी ओर किसी सत्य ज्ञान दायिनी विद्या का प्रचार न होने, और मूर्खता के महा भयानक अन्धकार से घिर जाने से, इस देश के वासियों की जो अधोगति हुई, उसका वर्णन नहीं हो सकता। इधर चारों ओर मिथ्या विश्वासों ने दबोचा हुआ है, उधर अविद्या और मूर्खता ने दबाया हुआ है। इधर नाना नीच सुख अनुरागों ने दिल पर अधिकार किया हुआ है, उधर नीच घृणाओं ने जहाँ तक सम्भव था परस्पर एक दूसरे को फाड़ा हुआ है। उच्च

और नीच कुल और वंश के मिथ्या प्रभेद भाव ने उन्नति करते २ उन्हें हज़ारों ज़ातों और बिरादरियों में विभक्त कर दिया है। यह ज़ात बिरादरिएं भी किस लिए रह गई ? इस लिए कि लोग परस्पर शादी करने के लिए लाचार थे. अन्यथा यदि पुरुष और स्त्री विषयक नीच सुख अनुराग इन करोड़ों मनुष्य आकारों में वर्तमान न होता, तो यह बिरादरियां भी वर्तमान न होतीं। फिर इन महा अधोगति प्राप्त बिरादरियों के लोगों ने भी साधारणत: एक दूसरे को सताने, एक दूसरे की हानि करके खुश होने, और पापाचार के बढ़ाने, और मिथ्या को प्रचलित करने के भिन्न और क्या काम किया है ? और तो और जिन कितनी हि राक्षसी रसमों के वह दास बन चुके थे, जिनके दास होकर वह तरह २ का अत्याचार और दुख सहते थे. उनसे निकलने के लिए हाथ पांव मारना तो कहीं रहा, उसके लिए कोई इच्छा करना तक असम्भव होगया। एक २ गधा भी ऐसा मिलता है कि जब उस पर बहुत अधिक बोझा लादा जाए, तो वह उछल कूद कर अपनी पीठ से उसे गिरा देने की चेष्टा करता है; परन्तु भारत के इन ईश्वर और वेद विश्वासी हिन्दुओं का हाल देखो, कि वह अधोगति प्राप्त होते २ अपने "अविनाशी" कहलाने वाले आत्माओं का यह स्वरक्षाकारी बोध भी नष्ट कर चुके। इनके आत्मा मफ़लूज हो गए। जैसे मफ़लूज आदमी प्रकाशत: जीता तो दिखाई देता है परन्तु अपने मारे हुए अंगों को हिला जुला नहीं सकता, वैसे हि यह प्रकाशत: जीवित रहकर भी आत्मा के नाना रक्षाकारी और हितकारी अंगों के विचार से बिलकुल मुरदा बन गए। और उच्च बनाने वाली शक्तियों और ऐसी शक्तियों से जिस उच्च चरित्र और उच्च बल की उत्पत्ति होती

है, उन से बिलकुल खाली रह गए। गिनती के विचार से करोड़ों की संख्या में थे, परन्तु अपनी नीच गतियों और इसीलिए नीच चरित्रों के विचार से बहुत बलहीन अवस्था में थे।

इन्हीं की तुलना में यूरोप के लोग, जो कई सौ वर्ष पहले जंगली अवस्था में थे, वह नाना अनुकूल घटनाओं को प्राप्त होकर धीरे २ कई अच्छे गुणों और इसीलिए सभ्यता में विकसित होकर अधिक शक्तिशाली और उच्च "नेशन" बन गए। और इन्हीं में से कई देशों के लोग पहले पहल अपने वाणिज्य की उन्नति के लिए इस देश में भी आए, और उन में से संख्या के विचार से बहुत थोड़े, परन्तु कई शक्तिशाली अच्छे गुणों के विचार से यहां के रहने वालों की अपेक्षा बिलकुल निराले इंगलेंड वासियों ने, जैसी कि आशा करनी चाहिए थी, धीरे २ इस देश के करोड़ों मनुष्यों पर अपना आधिपत्य स्थापन कर लिया। जैसे सौ भेड़ों के हांकने के लिए एक चरवाहा काफ़ी है, वैसे हि करोड़ों भारत सन्तान् को क़ाबू करने, और उन्हें अपने डंडे के नीचे रखने के लिए अपेक्षाकृत अल्प-संख्यक अंगरेज काफ़ी थे। इनका यहां आना और इस देश का अधिपति बनना, नेचर की विकासकारी शक्तियों के गुप्त कार्य्य के अनुकूल था—भारत के अधोगति से उद्धार, और उसकी उन्नति में एक वा दूसरे प्रकार से सहायक बनने के लिए, उनका हमारे देश का शासनकर्ता होना आवश्यक था। उनके राज्य ग्रहण करने से पहले हमारे देश में उपरोक्त अधोगति के फल स्वरूप भयानक अराजकता फैली हुई थी। उन्हों ने धीरे २ इस अराजकता को दमन करके उसके स्थान में शान्ति स्थापन की। मूर्खता और

अविद्या को दूर करने के लिए न केवल यहां की पुरानी और प्रचलित भाषाओं में साधारण लिखना पढ़ना सिखाने के लिए, किन्तु इस से बहुत गुणा बढ़कर क्या साहित्य और क्या सायंस के विचार से अपनी बहुत उन्नत अंगरेज़ी भाषा की शिक्षा के लिए भी सैंकड़ों स्कूल और कालेज जारी किए, नाना प्रकार की विद्वता के लिए डिगरियां देने के हेतु कई यूनीवरसिटियां स्थापन कीं। धर्म्म मतों और कार्य्यों के विषय में नाना सम्प्रदायों को सच्ची और समुचित स्वाधीनता दी। इनके इन भले और इसीलिए प्रशंसनीय कार्य्यों से हमारे हज़ारों देश वासियों को विद्वान् होने का अवसर मिला—इनकी तुलना में अपने देशवासियों का मुक़ाबिला करके कई बातों के विचार से अपनी गिरी हुई वा बुरी अवस्था को देखने और पहचानने के लिए आंखें मिलीं—इन्हें मालूम हुआ कि हम न केवल उनकी तुलना में, किन्तु दुनिया की और बहुत सी सुसभ्य कौमों की तुलना में अत्यन्त निर्धन हैं। वाणिज्य और कला कौशल के विचार से बहुत पीछे हैं। साधारण जनों में लिखने पढ़ने का प्रचार भी हमारे यहाँ उन की अपेक्षा बहुत कम है। स्वास्थ्य रक्षा विषयक नाना बातों के विचार से हम बहुत रद्दी हैं। धन, वाणिज्य, स्वास्थ्य और शासन आदि नाना कामों की सिद्धि के लिए परस्पर मिलकर एक वा मुत्तफ़िक़ हो जाने की जो योग्यता उन में है, वह हम में नहीं है। हमारे यहां के बावन लाख साधुओं की तरह उनके यहां बिलकुल निकम्मे और मुफ़तख़ोरे साधु नहीं हैं। वह जैसे किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए दलबद्ध होने और अपने दल के शासनकर्ताओं के अधीन रहने, और अपनी इच्छा और रुचि आदि के विरुद्ध विनय पूर्वक उनके हुकम

पर चलने की योग्यता रखते हैं, वह योग्यता हम में नहीं है। उन में डयूटी (duty) अर्थात् कर्तव्य पालन विषयक जो कई प्रकार के बोध मौजूद हैं, वह हम में नहीं हैं। वह जैसे एक २ बड़े कार्य्य की सफलता के लिए अनुराग रखते हैं और उसके लिए वर्षों तक और उमर भर और कई वार एक दूसरे के मारे जाने के बाद भी दृढ़ होकर जमे रहते हैं और कभी हिम्मत नहीं हारते, और उसके लिए सब तरह की मुसीबतों और दिक्क़तों का मुक़ाबिला करते हैं, हर तरह के दुख सहते हैं, परन्तु संग्राम से मुंह नहीं मोड़ते, वह गुण हम में नहीं हैं। उनके यहां और उनके भिन्न यूरोप और एमेरिका के और देशों में विविध प्रकार के ज्ञान की उन्नति और धर्म्म प्रचार के लिए जिस प्रकार हज़ारों लोग अपने सारे जीवनों को भेंट धरते हैं, और अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए धन, धरती, यश और नाम और नाना शारीरिक सुखों का त्याग करते हैं, और उस में सच्चा रहने के लिए किसी त्याग को त्याग नहीं समझते, वह त्याग हम में नहीं है। उन में नाना कामों के लिए जिस संख्या में विश्वास या एतबार के लायक़ लोग मिलते हैं वह हम में नहीं मिलते। उनमें प्रत्येक कार्य्य के सम्बन्ध में आत्म-सहाय का जैसा प्रबल भाव वर्तमान है, वह हम में नहीं। उन में आत्म-सन्मान् का भाव जिस क़दर विद्यमान है, वह हम में नहीं। उन में विवाह व्यवस्था, खान पान, विदेश भ्रमण आदि विषयक जिस सीमा तक न्यायमूलक और उन्नति-प्रद सच्ची स्वाधीनता पाई जाती है, वह हम में नहीं। उन में स्वच्छता, परिपाटी और सौन्दर्य्य

विषयक जो २ भाव जहां तक वर्तमान हैं, वह भाव साधारणतः हम में नहीं इत्यादि २। इन सुन्दर और शक्तिशाली गुणों के देखने के लिए अभी तक शिक्षित भाग के लोगों में भी बहुत अल्प जनों के भीतर और उन में से भी अधिकतर केवल कुछ २ के देखने के लिए कहीं २ आंख पैदा हुई है। मैं अपने अगले बयान में अंगरेज़ों या यह कहो कि यूरोपियन लोगों की इन खूबियों का यूरोपियन कैरैक्टर अथवा यूरोपियन चरित्र के नाम से वर्णन करूंगा।

परन्तु यहां पर यह बात याद रखने के योग्य है, कि यद्यपि उपरोक्त खूबियों के विचार से यह "यूरोपियन कैरैक्टर" हमारे देशवासियों की तुलना में बहुत उच्च है, और यूरोप के कई देशों के भिन्न अमेरिका निवासी भी इन खूबियों को लाभ करके बहुत प्रतिभा और शक्तिशाली "नेशन" बन गए हैं और इन्हीं खूबियों के कारण अंगरेज़ लोग हमारे प्रभु और शासनकर्ता बने हुए हैं, परन्तु यह नहीं, कि इन खूबियों के आ जाने से यूरोपियन वा एमेरिकन लोगों में और कुछ पाप वा बुराईयां नहीं हैं, अथवा वह किसी प्रकार के कुसंस्कारों और कुप्रथाओं के दास नहीं हैं—उन में केवल यही नहीं, कि यह सारी बातें पाई जाती हैं, किन्तु उन में कई बुराईयां हमारी अपेक्षा भी अधिक हैं।

यूनीवरसिटियों के स्थापन हो जाने, और हमारे देश वासियों के विद्या विभाग विषयक नाना परीक्षा में उत्तीर्ण होने और डिगरियां लेने और कितनी हि बार इन इम्तिहानों में अंग्रेज़ों से भी बढ़कर नम्बर पाने से जहां यह सत्य प्रमाणित होगया, कि इन्डियन लोग मानसिक विविध शक्तियों के विचार से किसी प्रकार अंग्रेज़ों से कम नहीं;

किन्तु किसी २ बात में बढ़कर हैं। और अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेज़ों के दैनिक दृष्टान्त और उनके साथ मेल जोल के असर से यद्यपि यह भी हुआ, कि बहुत से शिक्षित लोगों में अपने पूर्व्वजों से प्राप्त धन, मान शारीरिक वेश भूषा, रहन सहन और विलासिता सम्बन्धी आदि कई लालसाएं भी बहुत बढ़ गई हैं और कुछ जनों में अपने देश में विविध प्रकार के व्यवसाय और वाणिज्य विषयक कामों की उन्नति, विद्या प्रचार, और कुछ सामाजिक कुरीतियों के दूर करने और दलबद्ध होकर "नेशन" बनने का भाव भी कुछ २ जाग्रत हुआ है, परन्तु अभी तक उपरोक्त यूरोपियन करेक्टर के भली भान्त उपलब्ध करने और उसकी महिमा के देखने और उसके लिए आकांक्षी होने के कोई आसार नज़र नहीं आते।

धर्म्म की जिस मिथ्या फ़िलासफ़ी और उसके मिथ्या प्रचार ने हज़ारों वर्ष से मूल कारण बन कर हमारे देश वासियों को जिस महा शोचनीय अवस्था में पहुंचा दिया है, और अब वह बिगड़ते २ हृदय की जैसी पतित अवस्था रखते हैं, उसको सन्मुख लाकर एक २ बार यह प्रश्न उदय होता है कि और तो और सांसारिक गौरव के विचार से भी क्या यह लोग यूरोपियन और एमेरिकन अथवा जापानियों की न्याईं कोई प्रतिभाशाली और स्वाधीन नेशन बन सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं। अभी पचास वा सौ वा शायद उससे भी अधिक वर्षों तक परीक्षा होने के बाद इस प्रश्न का कोई ठीक उत्तर मिल सकेगा। परन्तु मेरी यह बात सदा याद रखनी चाहिए, कि पूर्व्वोक्त फ़िलासफ़ी के आधार पर वर्णाश्रम, हवन, पंचयज्ञ, वेदगान, गायत्री जप, योग समाधि, ईश्वर या किसी अन्य देव देवी

की उपासना आदि जितनी क्रियाएं हज़ारों वर्षों से प्रचलित रही हैं, उनके रूप में कुछ २ इधर उधर परिवर्तन कर लेने से, और शब्दों का कुछ २ हेर फेर कर देने से कोई वांछनीय फल पैदा नहीं हो सकता। कुटिलता और कपटता चाहे कैसी मोहिनी सूरत में सामने आती हो, फिर भी वह आख़िरकर वेश्या या कंजरी की तरह छलावा साबित होती है। जैसे धतूरे के जहरदार बृक्ष की हज़ार कतर छांट करके भी उस से खून उत्पादक और जीवन दायक सेब के फल पैदा नहीं कर सकते, वैसे हि कुटिलता और कपटता के द्वारा कोई जाति उच्च नहीं बन सकती।

यूरोप निवासियों की जो कुछ उन्नति हुई है, वह इंडिया की फ़िलासफ़ी से नहीं। विकास क्रम में उन की हृदय भूमि कुछ और बन चुकी थी। उस में ईसा घुस कर भी अपनी एशियाई वैराग्य की फ़िलासफ़ी का बीज न उगा सका। आज की रोटी मांग लो, और कल की रोटी का कुछ फ़िकर न करो; जैसे सुई के छेद में से ऊंट नहीं निकल सकता, वैसे हि धनी आदमी ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता; तुम्हारे एक गाल पर जब कोई अत्याचारी थप्पड़ मारे, तब उस ज़ालिम के हाथ से बजाय आत्म रक्षा करने के, उससे एक और थप्पड़ खाने के लिए अपना दूसरा गाल भी उसके आगे फेर दो; इत्यादि एशियाई ईसा की अथवा यह कहो कि हिन्दु और बौद्ध वैराग्य की शिक्षा को आख़िरकार यूरोपियन दिल और दिमाग़ क़बूल न कर सका। उसके दिल ने ईसा के दया भाव-मूलक कई शुभ कामों को तो ग्रहण कर लिया, और उसके धर्म्म पालकों ने बीमारों की सेवा, यतीमों की रक्षा, कोढ़ियों की शुश्रूषा जैसे नाना हितकर कामों में अपना जीवन खर्च करना तो धर्म्म

का काम समझा, परन्तु इन्डिया के लाखों साधुओं की न्यांई मुफ्तख़ोरा बनना और अन्य कमाने वालों की जेब से अपने नाना ख़र्च पूरे करना और तरह २ के नशे खाकर वा पीकर दिन काटना, अथवा योग समाधि का साधन करके मनुष्य से पत्थर बन जाना धर्म्म का काम नहीं समझा। यूरोप निवासी जिन २ विशेष घटनाओं में से गुज़र कर आज उच्च गौरव की अवस्था में पहुंचे हैं, वह घटनाएं भी हमेशा के लिए जा चुकीं। इन्डिया निवासी उन घटनाओं को अब अपने यहां कभी पैदा नहीं कर सकते।

परन्तु जैसे इन्डिया को अपनी महा हानिकारक वैदिक फ़िलासफ़ी और उसके नाना प्राचीन वा नवीन आकारों से उद्धार पाने की आवश्यकता है—और स्मरण रक्खो कि एशिया के जापान ने भी ईश्वर और वैदिक फ़िलासफ़ी के मिथ्या विश्वास से नहीं किन्तु उससे मुक्त होकर हि आश्चर्य जनक उन्नति की है—वैसे हि यूरोप और एमेरिका निवासियों को भी अपने आयंदा के उच्च विकास के लिए ईश्वर और पोप और बाईबल-मूलक नाना मिथ्या विश्वासों से उद्धार पाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को एक सीमा तक पूरा करने के लिए नेचर के विकासकारी विभाग के द्वारा वहां कुछ काल से कितने ही लोग पैदा होकर इन मिथ्या विश्वासों के नष्ट करने का काम कर रहे हैं। कई सोसाईटियां भी इसी उद्देश्य के पूरा करने के लिए बन चुकी हैं। पाज़िटीविस्ट, रेशनल प्रस, सेकुलरिस्ट और एथीकल सोसाईटियां इसी प्रकार के नफ़ी वाले काम में अर्थात् पुरानी बोदी और गिरने वाली दीवारों के ढाने में मसरूफ़ हैं *।

*भगवान के इस कथन के अनुसार अब वह लोग इन मिथ्या विश्वासों से बहुत कुछ निकलते आ रहे हैं। [मुद्रित कर्ता]।

परन्तु इस काल में क्या धर्म्म की विज्ञान मूलक सच्ची फ़िलासफ़ी की शिक्षा देने के लिए, क्या मनुष्य तत्व सम्बन्धी सत्य ज्ञान देने के लिए, क्या मृत्यु और जोवन तत्व सम्बन्धी सत्य ज्ञान प्रकाश करने के लिए और क्या धर्म्म विषयक सत्य साधन विधि प्रदान करने के लिए जिस पूर्णाङ्ग धर्म्मावतार (कल्पित ईश्वर का कल्पित मच्छ कच्छ अवतार नहीं) की सारी पृथिवी के लिए आवश्यकता थी, उसके प्रकाश का गौरव एक उसी देश को मिला, कि जो विकास-कारी नेचर के इस अद्वितीय दान को पहचानने के सर्व्वथा अयोग्य था।

५—देव धर्म्म की घोषणा और देव समाज स्थापन

चार वर्ष के संग्राम के वाद मुझे कुछ गिनती के जो शिष्य और सहायक प्राप्त हुए, उनको लेकर मैंने अपने व्रत सम्बन्धी कार्य्य को पूर्णतः स्वाधीन रूप से पूरा करने का इरादा किया। ६ फाल्गुण सम्वत १९४३ वि० अर्थात १६ फ़रवरी सन् १८८७ ई० को राज राजेश्वरी महारानी (अब परलोक वासिनी) विक्टोरिया के "गोलडन जुबिली महोत्सव" के अवसर पर, मैंने विधि पूर्वक एक अनुष्ठान के द्वारा देव धर्म्म की घोषणा करके, उसकी जय पताका खड़ी की। इसी को देव समाज के सूत्रपात का भी शुभ दिन समझना चाहिए। इस समय तक तीन जन मेरे साथ काम करने के लिए अपना सारा जीवन भेंट कर चुके थे। इनके भिन्न कुछ थोड़े से और हमदर्द और सहायक थे और

सब मिलकर प्रायः एक दर्जन आदमी थे। उन दिनों तीन मकान मेरे पास किराए पर थे, जिन में से एक में मैं रहता था दूसरे में आफ़िस था, और तीसरे में प्रेस। सन् १८८७ ई० के अन्त में मैंने इस देवाश्रम की जमीन ख़रीद की। सन् ८८ ई० में मैंने यहां पर छप्पर का एक मंडप खड़ा करके उसमें अपनी नई समाज का सब से पहला वार्षिकोत्सव सम्पन्न किया। फिर यहां धीरे २ कुछ और मकान बना और मैं उस में आकर रहने लगा, और अपना आफ़िस और प्रेस भी यहीं ले आया। फिर धीरे २ यहां कुछ और इमारतें बनीं और यह देवाश्रम पूर्णतः बनकर तैयार हो गया। तब से यही आश्रम मेरे काम का प्रधान स्थान रहा है। *

६—मेरी विरोधिता और मेरा विश्वास।

जीवन व्रत ग्रहण करने से पहले भी कितने हि लोग मेरे बहुत विरोधी थे, परन्तु व्रत ग्रहण करने के अनन्तर तो गोया चारों ओर आग लग उठी, कि जो आग समय के साथ २ अधिक से अधिक प्रचंड होने लगी। इस विरोधिता की अग्नि के प्रज्वलित होने का कारण क्या? कारण, मनुष्य में अहं-प्रियता का बहुत प्रबल भाव। अहं-प्रियता क्या? अपने संस्कार, अपने विश्वास, अपने मत, अपने स्वभाव अपनी रुचि, अपने आचार, अपनी इच्छा आदि का प्यार, चाहे इन में से कोई एक वा हर एक हि उसके और अन्य अस्तित्वों के लिए कैसी हि बुरी, कैसी हि

* इसके अनन्तर स० १९१६ ई० से श्री देवगुरु भगवान मेमोरियल मन्दिर की आलीशान इमारतें तैयार होकर, वह प्रधान स्थान बन चुका है। (मुद्रित कर्ता)।

अपराध वा पाप-मूलक और कैसो हि हानिकारक क्यों न हो। साधारण मनुष्य अपने किसी मिथ्या से मिथ्या संस्कार, वा मत वा विश्वास, और बुरे से बुरे स्वभाव और आचार के विरुद्ध कुछ सुनना पसन्द नहीं करता। और अपनी एक एक नीच से नीच और बुरी से बुरी, और पापी से पापी और मिथ्या से मिथ्या गति को इतना प्यार करता है, कि उस पर और तो और अनेक बार अपने किसी सच्चे हितकर्ता की ओर से भी कोई चोट पहुंचने पर बिलबिला उठता है, कोप से जल उठता है, आंखें बदल लेता है, मुँह फेर लेता है, घृणा से भर जाता है, और उसे श्रद्धा और सन्मान की दृष्टि से देखने के स्थान में अश्रद्धा और शत्रु की निगाह से देखता है; और यदि इसके भिन्न वह अपने हृदय में द्वेष वा प्रतिशोध का प्रबल भाव भी रखता हो, तो फिर कृतघ्न और उत्पीड़नकारी बनकर उसे तरह २ से सताने और हानि पहुंचाने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे सब जन आत्मिक हित और अहित बोध से शून्य होते हैं। सत्य और असत्य के बोध से खाली होते हैं। पाप और असत्य को मुँह वा लेख के द्वारा बुरा कहकर भी दिल से अहित और असत्य के पूर्ण अनुरागी होते हैं—अनुरागी हैं, इसी लिए सारी पृथिवी में इस क़दर मिथ्या और अहित प्रचलित हो रहा है।

अब जिस आत्मा को विकासकारी नेचर ने अपने विकासक्रम में सत्य और हित विषयक अनुराग शक्तियों और असत्य और अहित विषयक घृणा शक्तियों को बीज रूप में देकर प्रगट किया हो, और इन शक्तियों को विकसित करके उसे अपूर्ण और इसी लिए हानिकारक गठन से ऊपर पूर्ण गठन दी हो, और इस पूर्ग गठन के द्वारा सब प्रकार से सुन्दर, पवित्र, ज्योतिमय और पूर्णाङ्ग देवस्वरूप बनाकर

सारे जगत् के पूर्ण उद्धार और कल्याण के लिए परम आदर्श रूप में प्रकाशित किया हो, वह भला दुनियां से बिलकुल निराला जीवन रखकर और निराला जीवन व्रत ग्रहण करके क्योंकर अपने से उलटी प्रकृति रखने वाले लोगों में आराम से रहने की आशा कर सकता है ? नहीं कर सकता। वह आप नहीं कर सकता, कोई और बुद्धिमान् भी नहीं कर सकता। इसीलिए मेरे सैकड़ों, और सैकड़ों से बढ़कर हज़ारों की संख्या में विरोधी पैदा होगए। चारों ओर मेरे प्रति शत्रुता की महा भयानक आग जल उठी। चारों ओर से उसका धुआं उठने लगा। हज़ारों जनों के मुंह से यह आवाज़ निकलने लगी :— यह हमारे धर्म्म को हानि पहुंचाता है। यह हमारे धर्म्ममतों को नहीं मानता। यह हमारे धर्म्म की निन्दा करता है। यह हमें संसारासक्त (दुनिया परस्त) कहता है। यह हमें झूठा पुजारी बताता है। यह हमें पापी कहता है। यह हमें कुसंस्कारग्रस्त प्रगट करता है। यह हमें कपटी बताता है। यह ईश्वर अथवा किसी पुस्तक को ईश्वर रचित नहीं मानता। यह बड़ा घमंडी है। यह बड़ा पाखंडी है। यह अपने आपको सब सम्प्रदायों के संस्थापकों से बहुत बड़ा बतलाता है। यह हमारी सारी बातों को उलट पुलट किए देता है। ख़बर है, यह शैतान कहां से पैदा होगया ? यह हमारा दुशमन है। यह हमारे देश का दुशमन है। यह इस लायक़ है कि इसके साथ जितना बुरा सलूक किया जाए, उतना हि थोड़ा है। उसे किसी तरकीब से जेल में क़ैद कराना चाहिए। हो सके तो उसे जान से हि मार देना चाहिए इत्यादि नाना भावों की चारों तरफ़ से गूँज उठने लगी। सैकड़ों जनों के भीतर से घृणा की, सैकड़ों के भीतर से विद्वेष वा प्रतिशोध की, और सैकड़ों के भीतर से ईर्षा की खाजाने वाली और भस्म

कर देने वाली अग्नि की प्रचंड लाटें उठने लगीं। प्रति मास और प्रति वर्ष यह विरोधिता बढ़ने लगी। आह ! मैं अकेला और मेरे विरोधी हज़ारों। आह ! इतने बड़े और इतने शक्तिशाली विरोधी दल का मैं क्योंकर और कब तक मुक़ाबिला करूंगा ? इन प्रश्नों के उत्तर में समय २ में मेरे आत्मा के देवकोष से यह देवबाणी निकलती थी :—

"तेरे आत्मा में मेरा विकास किसी महत् उद्देश की सिद्धि के लिए है। विश्व के विकासकारी विभाग ने अपने लाखों वर्षों के महा कठिन संग्राम के बाद मुझे तेरे आत्मा में प्रगट किया है। सारे जगत् को हि अपने परम हित के लिए तेरे आविर्भाव की आवश्यकता थी। परन्तु और कितने हि देशों की तुलना में अत्यन्त शोचनीय और अधिकतर अधोगति प्राप्त भारत के उद्धार और कल्याण के लिए तेरी विशेषकर आवश्यकता थी। तू मेरी देव-शक्तियों के अधिकार में आ चुका है। तूने मेरी इन्हीं शक्तियों के वशीभूत होकर अपना वह अनोखा जीवन ब्रत ग्रहण किया है, कि जिसे तेरे सिवाय इस पृथिवी में कभी कोई ग्रहण करने के योग्य नहीं हुआ। क्या हुआ, कि तेरे सन्मुख इतना विरोधी दल खड़ा है। ऐसे विरोधी दल का खड़ा हो जाना भी आवश्यक था। जैसे विश्व के विकासकारी विभाग ने तुझे प्रकाशित किया है वैसे हि उसके अधोगति दायक विभाग ने उन्हें जन्म दिया है। जैसे भेड़िया निर्दोष भेड़ पर आक्रमण करने और उसे फाड़कर खाजाने के लिए अपने जन्म-जात हिंस्रक स्वभाव से हि चेष्टा करता है, वैसे हि यह अपनी जन्म-जात और औरों से वृद्धि-प्राप्त नीच प्रकृति के वशीभूत होकर तेरे शत्रु बनने, तुझे देखकर दान्त पीसने, घृणा करने और तुझे नाना

प्रकार से दुःख और हानि पहुंचाने के लिए चेष्टा करते हैं। परन्तु तू भेड़ नहीं, मनुष्य है, और मनुष्यों में भी देवआत्मा है। तू नेचर के महत् उद्देश के पूरा करने के लिए आविर्भूत हुआ है, इसलिए विश्व का जो विकासकारी महान् विभाग तेरा प्रकाशक है, वही तेरा रक्षक है, वही तेरा सहायक है। विश्वास रख, कि तू इस महा संग्राम में परास्त होने के लिए नहीं, किन्तु अन्त में जय पर जय लाभ करने के लिए है। तेरा विजयी होना निश्चय है। तेरे जीवन ब्रत का धीरे २ सफल होना अवश्यम्भावी है।"

ऐसी कई अवस्थाओं में मेरे हृदय में एक २ बार यहां तक ख़याल उठा कि यदि मैं इस अद्वितीय संग्राम में निधन भी हो जाऊं, और हमेशा के लिए अपने सारे अस्तित्व को भी खो बैठूं, तो भी मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सौभाग्य वा गौरव का विषय नहीं है, कि मैं अपने इस अद्वितीय ब्रत के लिए सच्चा रहूं। जब तक कल्पित ईश्वर पर मेरा विश्वास था, तब तक नेचर के विकासकारी विभाग के स्थान में, मैं अपने इस संग्राम में रक्षा और सहाय के लिए एक उसी पर निर्भर करता था—यद्यपि तब भी वह मिथ्या ईश्वर नहीं, किन्तु यही सत्य नेचर मेरी रक्षक और सहायक थी। परन्तु सत्य की अधिक ज्योति के मिलने पर जब से मेरा यह मिथ्या विश्वास चला गया, तब से एक मात्र नेचर के विकासकारी विभाग पर हि मेरा पूरा भरोसा और अटल विश्वास स्थापन होगया।

७–विरोधिता और उत्पीड़न का महा भयंकर तूफ़ान ।

आज से ६ वर्ष पहले एक ऐसे हि अवसर पर मैंने इस विषय में जो कुछ बयान किया था उसका संक्षिप्त सार "जीवनपथ" में छपा था। मैं उसे यहां उद्धृत करता हूं :—

'मैंने अपने देश की जो महा नीच और शोचनीय अवस्था वर्णन की, उस में ऐसे असाधारण ब्रत को ग्रहण करके मेरे लिए अपने देशीय जनों से नाना प्रकार की विरोधिता और उत्पीड़न लाभ करना अवश्यम्भावी था। मतों के मतवाले, ईर्षा से भरे हुए, विविध पापों के अनुरागी, अपने स्वार्थ के लिए और तो और अपने निकट से निकट के सम्बन्धियों पर भी अत्याचार करने वाले, वह लाखों जन जो किसी कल्पित ईश्वर के विश्वासी कहला कर भी धर्म्म अधर्म्म का कोई सच्चा ज्ञान न रखते हों और अशुभ उत्पादक नीच गतियों के अधीन हों, उन के लिए भला यह क्योंकर सम्भव हो सकता था, कि वह मुझे शत्रु के स्थान में मित्र, अथवा परम मित्र अनुभव करते, और मेरे लिए जहां तक सम्भव हो, हानिकारक होने के स्थान में सहायकारी बनते ? नहीं हो सकता था और इसी कारण से नहीं हुआ।

इसी लिए अपने जीवन ब्रत के ग्रहण करने के निमित्त, जिस दिन मैंने नौकरी से इस्तेफ़ा दिया, उसी दिन से मेरे प्रति विशेष रूप से विरोधिता का प्रकाश आरम्भ हुआ और जब उसके चार दिन के अनन्तर मैंने अपने जन्म दिन पर अपना जीवन ब्रत सम्बन्धी पबलिक अनुष्ठान

सम्पन्न करना चाहा. तब उस सभा में भी अधिकांश लोगों ने विघ्न डालने का प्रयत्न किया; और यदि वह अनुष्ठान कृतकार्य्यता के साथ पूरा हुआ, तो इस लिए नहीं, कि उस में विरोधी जनों ने अपनी किसी कृपा का प्रकाश किया था, किन्तु वह और उच्च शक्तियों की सहाय से पूरा हुआ था। नौकरी छोड़ने से पहले कितने हि जन, जो मुझे बहुत ज्ञानवान् और धार्म्मिक जानकर बहुत सन्मान् की दृष्टि से देखते थे, वह अब मुझे पागल और मार्ग के भिखारी के रूप में देख कर मुझ से कट गए, और मुझे घृणा करने लगे। मेरा यह जीवन ब्रत ग्रहण करना और अपने ब्रत (मिशन) सम्बन्धी कार्य्य की घोषणा करना, हज़ारों मनुष्यों के लिए इस प्रकार प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार किसी गांव में किसी भेड़िए वा शेर का घुस आना उसके निवासियों को हानिकारक और डरावना प्रतीत होता है। और जैसे बन्दूक की आवाज़ सुनकर सैंकड़ों कौवों में कोलाहल मच जाता है, और चारों ओर से कागारौल आरम्भ हो जाती है, उसी प्रकार मेरी ब्रत विषयक घोषणा को सुन कर चारों ओर कोलाहल मच गया। यह पागल है, खब्ती है मूर्ख है, देश में पहले हि बहुत भिखमंगे थे, अब एक और भिखमंगा पैदा होगया; इत्यादि, शब्दों की गूंज उठने लगी। उधर मैं ने अपना कार्य्य आरम्भ किया, उधर विरोधियों का विरोध भी बढ़ने लगा। यहां तक कि वह बढ़ते २ एक बहुत भयानक और धुआं-धार तूफ़ान बन गया।

जिन रूपों में यह विरोधिता का महा भयंकर झड़ प्रकाशित हुआ, उन में से पहले पहल मेरे सम्बन्ध में श्रद्धा के स्थान में घृणा का प्रचार था। इस घृणा के उत्पन्न

करने और फैलाने के लिए मिथ्याभियोग (झूठे इलज़ाम) आरम्भ हुए। ऐसा कोई बड़े से बड़ा अपराध न था, कि जिसका मैं अपराधी नहीं बताया गया। मुझे झूठा, ठग, प्रवंचक, औरों की सम्पद् का अपहरण करने वाला प्रगट किया गया। मुझे व्यभिचारी और कंजर बताया गया। मुझे खूनी और हत्यारा प्रसिद्ध किया गया। जब मेरे किसी पुत्र वा मेरी किसी कन्या की मृत्यु हुई, तब यह प्रकाशित किया गया, कि मैंने उसे मार डाला है। जब मेरी समाज का कोई कर्म्मचारी मरा, तब यह कहा गया कि मैंने हि उसकी हत्या की है। मुझे देश और "जाति" का दुश्मन और उनके लिए महा हानिकारक बताया गया; और खबर नहीं और क्या २ प्रगट किया गया। और यह सब कुछ जिह्वा के द्वारा हि नहीं; किन्तु वर्षों तक विविध अख़बारों में लिखने के द्वारा, बड़े २ रास्तों पर छपे हुए किन्तु गुमनाम इश्तिहारों के लगाने के द्वारा, और विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के प्रचार के द्वारा। और जिन कितने हि पापों से विरत होने के योग्य बनने पर मेरा कोई श्रद्धालु जन सब से निम्न श्रेणी की सेवकी में ग्रहण किया जाता है, मैं आप उन में से नाना प्रकार के पापों का कर्ता प्रकाशित किया गया। इस प्रकार मेरे प्रति अपवाद रटना करने और अत्यन्त घृणा के फैलाने पर भी जब कोई जन मेरी देव शक्तियों के प्रभावों से मेरी ओर आकृष्ट होकर आता, तब जैसे किसी मृत देह पर गिद्ध टूट कर पड़ते हैं, वैसे हि मेरे विरोधी उस पर टूट कर उसे नाना प्रकार से बहकाना और डराना आरम्भ करते और नाना प्रकार से उसे भगा देने की चेष्टा करते। इन भगोड़ों की अवस्था को सन्मुख लाने से हंसी भी आती है, और दुःख भी होता है। एक २ जन ने यद्यपि मेरे देव प्रभावों के द्वारा

कई प्रकार की नीचताओं से निकलने और कई प्रकार के शुभ लाभ करने का अवसर पाया, और पहले की अपेक्षा वह कितने हि अंगों में भला जीव बन गया, परन्तु ज्योंहि विरोधी जनों ने उसके कान भरने आरम्भ किए त्योंहि उसने "हितोपदेश" के उस ब्राह्मण की न्याईं, कि जो जंगल में बकरी लिए जाता था, परन्तु मार्ग में कई ठगों ने बारी बारी से प्रगट होकर जब उसे यह कहा, कि यह बकरी नहीं है, कुत्ता है, तब उसने अपनी बकरी को कुत्ता समझ कर छोड़ दिया था, एक २ बागी आत्मा अपनी साक्षात् परीक्षा के विरुद्ध उनकी मिथ्या बातों पर विश्वास करके अपने शुभ और शुभकर्ता को परित्याग करके उन का साथी बन गया। मिथ्या कल्पना का जिस देश में हज़ारों वर्ष तक प्रचार रहा हो वहां किसी जनके लिए अपनी साक्षात् परीक्षा और सत्य के विरुद्ध भी मिथ्या पर विश्वास करने के लिए प्रस्तुत हो जाना, कोई अचम्भे की बात नहीं। इस प्रकार के भगोड़ों के भिन्न कुछ भगोड़े और भी थे, कि जो एक समय में किसी उच्च भाव के जाग्रत होने पर मेरे पास आकर रहे, परन्तु मेरे पास अपनी एक वा दूसरी नीच रुचि और प्रकृति की सामग्री न पाकर ठहर न सके, और भाग गए। और इन में से जिन के भीतर एक ओर कृतज्ञता का कोई भाव उत्पन्न नहीं हुआ था, और दूसरी ओर उसके विरुद्ध प्रतिशोध का भाव प्रबल रूप में वर्तमान था वह मेरे विरोधियों के साथ मिलकर मेरे बहुत बढ़ चढ़कर शत्रु बन गए। ऐसे लोगों को सामने रखकर और आड़ बनाकर मेरे विरोधी जनों ने मुझे और भी महा भयानक क्लेश और हानि पहुंचाने का अवसर पाया। उनकी इस महा भयानक नीच अवस्था से मेरे हृदय पर जिस २ प्रकार के आघात् लगे, मुझे जिस २ प्रकार के

क्लेश पहुंचे, उनका वर्णन नहीं हो सकता। इन महा निदारुण आघातों से मुझ पर जिस २ भयानक रोग ने आक्रमण किया, महीनों तक ऐसे किसी रोग से मेरे शरीर की जो कुछ दुःखदाई अवस्था रही, उसका केवल उन्हीं को कुछ पता है, कि जो ऐसे संकटमय समय में मेरे पास थे। इन सब आघातों और महा क्लेशों को प्राप्त होकर मैं सदा के लिए कई रोगों से रोगी हो गया। परन्तु यह सब कुछ भी काफ़ी न था। मैं जब अपने स्थान में प्रचार अथवा वार्षिक उत्सव आदि सम्बन्धी सभाएं करता था, तब उन में यह लोग आकर नाना समयों में जिस २ प्रकार की लीला करते थे, उससे एक २ बार ऐसा प्रतीत होता था कि यह लोग अपनी नीचता के प्राबल्य से उस समय किसी गवर्नमेंट की भी परवाह नहीं करते। सभा स्थान में बैंचों और लैम्पों का तोड़ना, मेरे किसी जन की कोई वस्तु छीनकर लेजाना वा उसे नष्ट कर देना, किसी समय मेरी किसी वस्तु को आग लगा देना, मेरे आश्रम में ईंटों और रोड़ों की वर्षा करना चिल्ला २ कर मुझे अशलील गालियां देना, आश्रम के पास खड़े होकर फक्कड़ बकना और स्यापा करना, उनका उस समय एक मामूली काम था। मेरे साथियों को राह में छेड़ना, उन पर मट्टी और ढेले फैंकना, उनके हाथ से पुस्तकें आदि छीन लेना; उन्हें घूंसे मारना, किसी का लाठी से सिर फोड़ देना, इत्यादि, नाना प्रकार से मुझे उत्पीड़त करके वह बहुत बड़ी प्रसन्नता लाभ करते थे। इन सब के भिन्न वह मेरे मार डालने के लिए भी अपने लेखों के द्वारा बड़ी २ धमकियां देते रहते थे। छपे हुए विज्ञापनों में ऐसी कामना प्रकाश करते थे, कि कोई राक्षस आकर इस का गला

घोंट दे।"

यह विरोधिता बढ़ते २ सन् १८९२ ई० में तूफ़ान का रूप धारण करती है। इस साल अर्थात् पांचवें वार्षिकोत्सव पर कई जन यह कहकर कि उन्हें ईश्वर ने मेरे मिशन में काम करने की प्रेरणा की है, मेरे पास अपने आत्माओं को भेंट करने की आकांक्षा प्रकाश करते हैं। यह सभी यद्यपि कई बड़े २ पापों को त्याग कर चुके हैं, परन्तु उनके हृदयों पर नाना नीच अनुरागों और नीच घृणाओं का बहुत बड़ा अधिकार है। वह आत्म-श्लाघा के अनुरक्त हैं। उन में से कोई ईर्षा-परायण हैं और कोई द्वेष वा प्रतिशोध का महा भयानक भाव रखते हैं। वह अपनी किसी अवज्ञा और अपने किसी अपराध के लिए टोके जाने पर जल भुनकर आग का सुर्ख़ अंगारा बन जाते हैं, और अपने परम हितकर्ता को भी शत्रु के रूप में देखने लगते हैं। सवाल हो सकता है, कि ऐसे जनों को लेकर मेरा कौनसा कार्य्य सिद्ध होगा? परन्तु इधर मेरा देश मुझे इससे कुछ बहुत बेहतर आत्मा नहीं दे सकता, उधर वह मेरे पास ईश्वर की ओर से अपनी तकर्ररी का परवाना लेकर आते हैं। मैं खुद भी ईश्वर का पूर्ण विश्वासी हूं, इसलिए एक ओर उनकी असल अवस्था का तजरुबा न रखकर और दूसरी ओर उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरित समझ कर मैं उन्हें कम से कम आज़मायश के तौर पर ग्रहण करने के लिए मजबूर होता हूं। थोड़े दिनों में हि उन में से कई अपने असल रूप में प्रगट होना शुरू करते हैं—इन में से किसी २ को कुछ हफ्तों और कई को कितने हि महीनों के बाद उन की नीच कर्तूतों और अयोग्यता के कारण निकालना पड़ता है। और कुछ कई साल तक

अपनी इस प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहने के लिए संग्राम करते हैं, परन्तु फिर परास्त होकर यद्यपि कोई और काम स्वीकार कर लेते हैं, तो भी समाज से बाग़ी नहीं बनते। परन्तु बाग़ियों में से कई उसी समाज की पनाह लेते हैं, जिस से कभी वह खुद निकल कर आए थे। इन बाग़ियों में से कुछ जो वाहवा के बहुत अधिक भूखे थे; अथवा कृतघ्नता का बहुत प्रबल भाव रखते थे, वह स्वभावतः मेरे विरोधियों के साथ जा मिले, और उन के मनसूबों में शामिल हो कर जहां तक सम्भव था. मुझे और मेरे मिशन को प्रत्येक मिथ्या कलंक और अन्य बुरे उपायों के द्वारा आघात और हानि पहुंचाने के लिए खड़े होगए। इन कृतघ्नों की सहाय पाकर मेरे हज़ारों विरोधियों के दिल उत्साह से भर गए। हर तरफ़ कोलाहल मच गया। सब तरफ़ से मुझे और मेरे व्रत को नष्ट कर देने के लिए बड़े जोश के साथ प्रयत्न शुरू हुए। चारों ओर से महा दुखदाई तूफ़ान उठने लगा। इधर मैं पहले से हि ऐसे हि अज़ाबों से रोगी बन चुका था उधर इन दयावानों ने मुझ रोगी को भी मार कर खाजाने की ठान ली।

इस समय मेरी क्या हालत थी, उसका कुछ पता उस लेख से मिलता है, कि जो मैंने एक बाहर के स्टेशन से उसी साल "विलाप" के हेडिंग से लिखा था। मेरा यह "विलाप" 'धर्म्म जीवन" में छपा था। उसका एक बड़ा भाग यह है :—

'आह ! मेरी हालत कैसी दर्दनाक है ! हाय ! मेरी अवस्था कैसी कृपापात्र है ! ! क्या इस दुनियां में कोई जन ऐसा है, कि जो मेरे दुखिया दिल के लिए सांन्त्वना दाता

और मेरी असहाय अवस्था में मेरा हमदर्द साबित हो ? अब तक कोई नहीं । हां, मेरी तकलीफ़ों को और जन तो कहां रहे, किन्तु जो जन मेरे निकट रहते हैं, वह भी ठीक तौर से अनुभव नहीं कर सकते । हाय ! मैं इस निराले कष्ट को अकेला हि सहने के लिए पैदा हुआ हूं । हाय ! मेरा इस दुनिया में कोई नहीं ।"

"सारे दिन की मेहनत के बाद एक पापी से पापी मज़दूर भी रात को आराम से सोता है, और सुबह को फिर काम के लायक़ बन जाता है, परन्तु मुझे अनेक बार रात का यह आराम भी प्राप्त नहीं । आह ! मैं उस साधारण आराम से भी वंचित किया जाता हूं कि जो इस दुनिया में छोटे से छोटे जीवनधारी को भी प्राप्त है ! !"

"प्रश्न यह है कि मुझे यह सब महा कष्ट क्यों मिल रहा है ? क्या यह मेरे किसी पाप का फल है ? कदापि नहीं, क्योंकि मैं उससे पवित्र हूं । फिर क्या यह मेरे किसी नीच अनुराग की प्रेरणा का फल है ? कदापि नहीं, क्योंकि मैं प्रत्येक नीच अनुराग के अधिकार से ऊपर हूं । तब फिर प्रश्न यह है, कि यह दुख और अज़ाब कहां से ? इसके उत्तर में मुझे यही कहना पड़ता है, कि यह सब घोर कष्ट मुझे उन लोगों के अत्याचार अथवा अनुचित आचरण से मिल रहा है, जिनका उद्धार और जिन में उच्च जीवन की उत्पति करना मेरी जिन्दगी का मिशन है । और जो अपनी महा नीच प्रकृति और पाप विषयक अनुराग के कारण मुझे जान बूझकर वा बेख़बरी से तरह २ का अज़ाब देने में ख़ुशी हासिल करते हैं ।"

"परन्तु यह अज़ाब दो चार दिन वा दो चार सप्ताहों

का नहीं, कि जिसे किसी न किसी तरह दिल पर ज़ोर देकर बरदाश्त किया जाए। उसका सिलसिला वर्षों से जारी है, और उसे सहते २ न केवल मेरा दिल किन्तु मेरा शरीर भी चकनाचूर होगया है। मैं इस उत्पीड़न से अपनी शारीरिक स्वास्थ्य कई वर्षों से खो चुका हूं। कई शारीरिक रोग मुझ में हमेशा के लिए पैदा होगए हैं। मेरा दिमाग़ बहुत लम्बे काल तक अतिशय परिश्रम करने और अपने जीवन व्रत सम्बन्धी नाना चिन्ताओं में ग्रस्त रहने के कारण बहुत कमज़ोर होगया है। इधर मेरे शरीर को आराम नहीं, उधर मेरे दिल और दिमाग़ को आराम नहीं। मैं सब तरफ़ों से कष्टों से घिरा हुआ हूं। इस पर जब मेरे विरोधी मुझ पर कोई छोटी चोट भी लगाते हैं, तब वह भी मेरे पूर्णतः निराले उच्च बोधों के कारण मेरे लिए इतनी कष्ट दायक प्रमाणित होती है, कि उससे एक २ बार मेरा सारा हृदय और सारा शरीर चूर २ हो जाता है। और जब उनकी ओर से मुझ तक कोई बड़ा आघात् पहुंचता है, तब उससे मेरे भीतर जिस प्रकार की भयानक बिलबिलाहट और बेचैनी पैदा होती है, और ऐसे समयों पर मुझे जिस २ प्रकार का असह्य दुख मिलता है, उसे मेरे भिन्न और कोई नहीं जान सकता।"

"तुम यदि किसी रेत के ढेर पर एक ढेला मारो, तो उस में उस के परमाणु फैल कर बहुत थोड़ी सी जगह घेरेंगे। परन्तु यदि एक तालाब के पानी में वही ढेला मारो, तो उसमें उसकी चोट से फैलते २ एक बहुत बड़ा गोलाकार कुंडल बन जाएगा। उसी प्रकार मेरे दिल का हाल है। किसी पापी के दिल पर अपने किसी साथी

के एक वा दूसरे पाप से जहां कई बार कुछ आघात् नहीं लगता. और कई बार केवल नाम मात्र लगता है, वहां ऐसे नाना पापियों के एक २ हमले, और जो मेरे निकट रहते हैं उनकी एक २ अनुचित क्रिया से मेरे दिल पर जो आघात् लगता है, वह अपने घेर और असर के लिहाज़ से मेरे हृदय में निहायत दूर तक फैलता है. और मुझे इतना भयानक कष्ट और दुख देता है. कि जिस का मैं किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकता।"

"मेरा हृदय साधारण मनुष्यों का सा नहीं, किन्तु उन से पूर्णतः भिन्न और निराला है। मैं अपने देव जीवन के विचार से सब मनुष्यों से अपनी विशेषता रखता हूं। मेरा यह हृदय निराले देव भावों से संगठित होने के कारंण पिशाचत्व के साथियों से उनकी एक २ नीच गति से चोट खाकर और घायल होकर निराला ही दुख अनुभव करता है। शोक है, कि मेरे विरोधी मुझ पर जो चोटें लगाते हैं, उन से मेरे साथी मेरी रक्षा करने के स्थान में अनेक बार अपनी अबोधता से उस में मददगार साबित होते हैं; और जो पत्थर किसी दुशमन के हाथ से निकल कर मेरी ओर उड़ता हुआ आता है, उसे कई बार मेरे साथी भी मुझ तक पहुंचा देते हैं !! और इस प्रकार मैं कहीं जाऊं और कहीं रहूं, मेरा ऐसे दुखों और उत्पीड़नों से पीछा नहीं छुटता। ओह ! मैंने इतने साल तक अपने निराले जीवन व्रत की सिद्धि में जितने २ प्रकार के महां भयानक और घोर से घोर कष्ट पाए और असह्य दुख सहे हैं, उनका हिसाब किस के पास है, और उनकी साक्षी कौन देगा ?"

"इस देश की पुरानी परन्तु मिथ्या फ़िलासफ़ी का विश्वासी कोई भी जन मुझे यह कह सकता है, कि जब तू दुनिया के हर एक अपवित्र सम्बन्ध से मुक्त है, और अपनी प्रकृति के विचार से इस दुनिया के लोगों में से नहीं है, तब फिर क्यों उन लोगों में रहकर और उन के लिए जीकर वर्षों से यह महा भयानक और असाधारण दुःख और कष्ट सह रहा है ? क्यों नहीं, ऐसे सब लोगों से अपना सब सम्बन्ध काट कर अलग हो जाता, कि जिन से यह कुल दुःख और अज़ाब तुझ तक पहुंच रहे हैं, ? इस के उत्तर में मैं यही कह सकता हूं, कि मेरा मिशन विशेष है, और मेरे प्रगट होने का ख़ास मक़सद है, जिसका पूरा होना, क्या इस देश और क्या कुल दुनिया की सर्व्वोच्च भलाई के लिए ज़रूरी है, और मेरा वह मिशन इन महा दुखों और कष्टों के ग्रहण करने के बिना पूरा नहीं हो सकता।"

विरोधियों के हमले बराबर जारी रहे। इन्हीं दिनों में एक कृतघ्न ने मेरे विरुद्ध एक पुस्तक प्रकाशित की, और कुछ जनों ने अख़बारों में बहुत से मिथ्या लेख भी छापे। इन सब के द्वारा मेरे विरुद्ध घृणा और विद्वेष की अग्नि को खूब भड़काया गया। पहली नवम्बर सन् ९२ को लाहौर में एक विराट सभा की गई, कि जिसमें हज़ारों आदमी शामिल थे। इस सभा में उसे, जिसे कुछ दिन पहले कई कृतघ्न अपना परम हितकर्ता कहते थे, अर्थात् मुझे और मेरे परिवार को, और मेरे कई अनुयाईयों को, जो पहले उनके श्रद्धा के पात्र थे, और जो उनकी न्याईं बाग़ी नहीं बने थे, खूब दिल खोलकर बुरा बताया गया। जिस ईश्वर के आदेश से कुछ दिन पहले वही लोग मेरे

पास अपने आपको भेंट करने के लिए आए थे, उसी की वर्तमानता में अब इस भरी सभा में मेरे मरने और मेरी पत्नी के शीघ्र विधवा हो जाने के लिए भक्ति पूर्वक प्रार्थना की गई। परन्तु मैंने उनकी इस विरोधिता को महा पाप मूलक जानकर भी अनेक बार न केवल उन कृतघ्नों, किन्तु और कितने हि बड़े २ विरोधियों को अपनी मंगल कामनाओं में स्मरण करके उनका कल्याण चाहा है।

इसके भिन्न मुझे और मेरे काम को मटियामेल कर देने के लिए, वह सब नाना प्रकार के पापाचार ग्रहण किए गए, कि जिनकी उनके ईश्वर परायण हृदय उन्हें प्रेरणा करते थे। अदालत में एक बड़े से बड़े अपराधी को भी अपने बचाव या "डिफ़ेन्स" का अवसर दिया जाता है परन्तु उनकी सभा के दो दिन बाद जब मैंने अपने आश्रम में एक पबलिक सभा आवाहन करके अपने डिफ़ेन्स को पेश करने की कोशिश करनी चाही और वह कोशिश भी बहुत सख्त तकलीफ़ और बीमारी की अवस्था में, तब इन न्यायकारी ईश्वर के भक्तों ने अपनी क़लई खुलती देखकर उस सभा को अपने भयानक शोर और गुल शरारत और दंगेबाज़ी के द्वारा होने न दिया। और अगर मेरी रक्षाकारी शक्तियाँ मेरी रक्षा न करतीं, तो वह लोग मुझे पासकर, और यथा सम्भव मुझे जान से मार कर अपने दिलों को ठंडा करते। यह सभा तो होने से रह गई, पर मेरे पहले से बहुत रोगी शरीर की स्नायु प्रणाली पर उनकी इन राक्षसी क्रियाओं से इस क़दर आघात् लगा, कि वह बिलकुल चकना चूर हो गई, और मैं अत्यन्त बीमार होगया। मेरी बीमारी दिनों दिन बढ़ने लगी, और मैं अन्त में उस अवस्था में पहुंच गया, कि जिस में मेरे बचने की कोई

आशा न रही।

रात का समय था और चारों ओर सन्नाटा था। मृत्य का कार्य्य मुझ पर जारी था, और मैं पूर्णतः अचेत पड़ा हुआ था। मेरे पास जो जन वर्तमान थे, वह यही समझते थे, कि मेरे लिए वह रात काटनी कठिन है। मुझे आप भी पता न था, कि मैं कहां हूं। परन्तु इस घोर संकट की अवस्था में भी मेरे कुछ परलोक वासी उच्च सम्बन्धी मेरे पास उपस्थित होकर मेरे बचाने के लिए अपना २ धर्म्म बल प्रयोग कर रहे थे। जीवन और मृत्यु में संग्राम जारी था। अन्त में धर्म्म बल ग़ालिब आया, मृत्यु का कार्य्य बन्द हुआ, और मैं होश आगया। तब से आरोग्यता का क्रम आरम्भ हुआ, और प्रायः दो महीने में मैं फिर चलने फिरने के योग्य बन गया। मौत के बिस्तर से उठकर मैं फिर अपने व्रत सम्बन्धी कार्य्य में लग गया।

इस प्रकार की यह आख़री दुर्घटना न थी, किन्तु प्रायः ऐसी हि दुर्घटनाओं में से मुझे और भी अनेक बार गुज़रना पड़ा है। मुझे इस दुर्घटना में से गुज़र कर बहुत सी नई ज्योति और शक्ति लाभ हुई। मुझ पर प्रकाशित हुआ, कि मुझे अपनी कार्य्य प्रणाली में बहुत कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है। समाज का वार्षिक उत्सव निकट था और मैंने निश्चय किया, कि मैं इस अवसर पर सब आवश्यक परिवर्तन कर दूंगा। मैंने अत्यन्त परिश्रम के साथ यह सब कार्य्य पूरा किया। इसी उत्सव अर्थात् फ़रवरी सन् १८९३ से सेवकी में दीक्षित होने की प्रथा जारी हुई। मेरे विरोधियों का विरोध भी बराबर बढ़ता गया। इस उत्सव सम्बन्धी देवयज्ञ में विघ्न डालने, और उसे नष्ट करने के लिए मेरे विरोधियों ने भी नाना आसुरिक क्रियाएं

शुरू कीं। भान्त २ का अत्याचार जारी किया। यहां तक कि उनके ऐसे अत्याचारों की ज़िले के मजिस्ट्रेट तक शिकायत करने की आवश्यकता हुई, और उस ने यद्यपि पुलीस के द्वारा उन्हें भली भान्त भर्तसना भी करदी, परन्तु जैसे चीता अपनी खाल की धारियों को नहीं बदल सकता, वैसे हि यह लोग भी अपनी राक्षसी प्रकृति को बदल नहीं सकते थे। इसलिए उनके आसुरिक भाव बराबर बढ़ते गए।

वर्षों तक इस प्रकार के सलूकों के अनन्तर जब उन्हों ने अपना उद्देश्य पूर्ण होता हुआ न देखा, तो कुछ जनों की ओर से एक और प्रकार का उत्पीड़न आरम्भ किया गया। अर्थात् धर्म्म जीवन पत्र के एक दो लेखों को लेकर "लायबिल" के मुक़दमे खड़े किए गए। इन मुक़दमों की पैरवी के लिए, जहां किसी स्थान में मेरे लिए किसी वकील का हासिल करना कठिन कर दिया गया, वहां दूसरी ओर बिना मेहनताना लेने के बहुत से वकील विपक्षी के साथी बन गए। यह वह समय था, जब कि हम गिनती के कुछ असहाय जन एक ओर थे कि जो न बहुत धन रखते थे, न कोई बन्धु वा मित्र रखते थे, न अदालतों का कोई तजरुबा रखते थे; और उधर जो धनी थे, बड़े २ सरकारी अफ़सरों के मित्र थे, आप वकील होने के कारण क़ानून और अदालतों की उत्तम रूप से अभिज्ञता रखते थे, वह दूसरी ओर थे। हमें अपने साथियों से बाहर एक जन भी ऐसा नहीं मिलता था, कि जो हमारे पक्ष के समर्थन के लिए कोई बड़ी सहायता तो एक ओर, कोई सच्ची गवाही तक दे सके। यहां तक, कि एक २ समय में जिन्हों ने हम से नाना प्रकार का हित लाभ किया था, वह भी

हमारे पक्ष में कोई सच्ची साक्षी तक देना नहीं चाहते थे। और हम लोग सब प्रकार से अति असहाय अवस्था में पहुंचाए गए थे। ईश्वर के पुजारियों और "सत्यमेव जयते" कहने वालों की कमी न थी, परन्तु उन में से कोई सत्य का साथ देने के लिए प्रस्तुत न था। हां, उलटा हमारे विपक्षियों की सहाय करने के लिए कितनों का हृदय उछलता था और हमारा विपक्षी खुली अदालत में यह कहता था, कि इनके मिशन का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। वर्षों तक यह क़ानूनी उत्पीड़न जारी रहा, और वर्षों तक उसके द्वारा जहां तक हमें सताया जा सकता था, जहां तक हमें और हमारे कार्य्य को हानि पहुंचाई जा सकती थी, वहां तक उसके लिए यत्न किया गया। इन दिनों में हमें ईश्वर और उसके पुजारियों की जितनी परीक्षा हुई, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी, हमारी इस असहाय अवस्था में हमारे विरोधियों के लिए यह विश्वास करना स्वाभाविक था, कि अब इनके "मिशन" की इतिश्री होगई। और चारों ओर यही सम्वाद घोषणा भी किया जाता था और हज़ारों जन इस समाचार को सुनकर बहुत हर्ष प्रकाश करते थे। परन्तु इस महा कठिन संग्राम में यद्यपि मेरा शरीर चूर २ होगया, सदा के लिए रोगी होगया, धन सम्बन्धी भी बहुत हानि पहुंची, प्रेस भी बन्द होगया, काम काज में बहुत विघ्न रहा, परन्तु अन्त में अधर्म्म पर धर्म्म की हि जय हुई। और यह बचन सत्य प्रमाणित हुआ, कि "यतो धर्म्मस्ततो जयः" अर्थात् जिधर धर्म्म हो, उधर की हि जय होती है।

यहां पर यह प्रश्न हो सकता है, कि मेरे यह महा विरोधी उत्पीड़नकारी कौन जन थे? इसके उत्तर में मैं

बता सकता हूं, कि अधिकांश रूप से यह वही जन थे, जो एक ईश्वर के विश्वासी और पुजारी कहलाते हैं। अधिकतर यही वह लोग थे, कि जो अपने लिए धर्म्म प्रचार विषयक सब प्रकार की स्वतंत्रता रखना चाहते थे, परन्तु मेरी धर्म्म विषयक उचित स्वतंत्रता को मिटा देने के लिए यत्न करते थे। यही वह लोग थे, कि जो उपरोक्त सब प्रकार का उत्पीड़न करके अपने ईश्वर की इच्छा पूरी करते थे। इनके सम्बन्ध में एक घटना सुनने और स्मरण रखने के योग्य है। और वह यह है, कि कितने हि वर्षों तक, मैंने इनका अत्याचार सहने के अनन्तर एक बार सुयोग पाकर जब इनके समाचार पत्रों को दो ऐडीटरों पर (कि जिन में से एक ने मुझे और मेरे मिशन को हानि पहुंचाने के लिए गिन २ कर बहुत अश्लील शब्दों में मुझ पर नाना प्रकार के झूठे अभियोग (इलज़ाम) लिखकर छापे थे, और दूसरे ने यह कह कर, कि हां, यह अभियोग बिलकुल ठीक हैं, अपने समाचार पत्र के द्वारा पोषकता की थी) अदालत में नालिश की, तो इन लोगों ने बड़े २ वकीलों के परामर्श के अनन्तर यह जानने पर कि हम अदालत में इन झूठे इलज़ामों को किसी प्रकार भी सच्चा प्रमाणित नहीं कर सकते; और यद्यपि वह वर्षों तक ऐसी करतूतें करके अपने एक ईश्वर को अवश्य प्रसन्न करते रहे हैं; परन्तु अदालत के प्रभु को प्रसन्न नहीं कर सकते; वह अवश्य उन्हें उचित दण्ड देगा, मेरे पास यह सन्देशा भेजा, कि वह मुझ से माफ़ी मांगने के लिए प्रस्तुत हैं। और जब उन से यह पूछा गया, कि क्या तुम अपने इलज़ामों का झूठा होना स्वीकार करते हो, ? तो उन्हों ने कहा, हां ! इस पर उन्हें कहा गया, कि अच्छा, अब तुम अपने २, और अपने भिन्न चार पांच और अंग्रेजो

और उर्दू समाचार पत्रों में यह प्रकाशित करो, कि हमने इन के सम्बन्ध में यह जितने मन घड़त और झूठे अभियोग छापे हैं, उनके लिए हम बहुत लज्जित हैं, और आगे फिर इनके सम्बन्ध में और झूठे अभियोग नहीं छापेंगे। यह बात उन्होंने स्वीकार की, और अपने और अन्य कितने हि समाचार पत्रों में इस प्रकार छपवा भी दिया। अब देखो, कि एक मात्र पूजा के योग्य और सर्व शक्तिमान् ईश्वर, और विचारालय के न्यायाधीश और अल्प शक्तिमान् प्रभु में कितना अन्तर है ! वर्षों तक वह जिस सर्व शक्तिमान् ईश्वर की पवित्र इच्छा पूर्ण करने के लिए, हमारे विरुद्ध नाना प्रकार के अभियोग सत्य कहकर प्रचार करते रहे, उन्हीं को एक अल्प शक्तिमान् विचारपति के दण्ड से डरकर झूठा कहने लगे। और यदि यह कहा जावे, कि वह पहले भी अपनी इन करतूतों को ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध और पाप जानते थे, तो फिर जिस ईश्वर की वह एक सामान्य आज्ञा का भी पालन नहीं कर सके, उसकी और उसकी पूजा की महिमा औरों के सामने वर्णन करना, क्या बहुत बड़ी धृष्टता नहीं ? परन्तु, जैसा मैं ने कहा है, मेरे उत्पीड़नकर्ता अधिकांश रूप से यही ईश्वर के विश्वासी और पुजारी रहे हैं। और इन्हीं लोगों के हाथ से मुझे वह सब महा दुख और क्लेश मिले हैं, कि जिनका मैंने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है।

मैं इससे पहले अपने "विलाप" शीर्षक लेख में से एक भाग उद्धृत कर चुका हूं। देव समाज के इतिहास में यह स्मरणीय लेख ४ अकतूबर सन् १८९२ ई० की रात को लिखा गया था। प्रायः आधी रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा था। बहुत वर्षों की लगातार विरोधिता

के आघातों से मेरा शरीर बहुत रोगी और दुर्बल अवस्था में था। मेरा हृदय चूर २ होकर अत्यन्त दुःख और विषाद से भरा हुआ था। मेरी आंखें आंसुओं से भीग रही थीं। मेरे जीवन व्रत का जहाज़–जिस पर मेरे परम लक्ष्य का झंडा खड़ा हुआ था–शोक सागर में बड़े वेग से डगमगा रहा था; मेरे चारों ओर निराशा का गहरा अन्धेरा छाया हुआ था। मैं विपद की अवस्था में था। परन्तु इस घोर संकट के समय में भी इस समुद्र के किनारे का "लाइट हाऊस" बखूबी रोशन था; अर्थात् मेरे आत्मा की पथप्रदर्शक ज्योति बराबर चमक रही थी। इस ज्योति में मैंने अपने हृदय के गहरे उद्वेग से, अपने विलाप के आखीर में यह शब्द लिखे थे :—

"परन्तु क्या इस निर्दोष का यह महा भयानक दुःख और अज़ाब उठाना वृथा जाएगा? क्या जो पुरुष अपने निराले जीवन व्रत के कारण इस उत्पीड़न और कष्ट से मृत्यु–प्राय अवस्था तक पहुंच चुका है, और जिस के लिए सच्चा और वफ़ादार रहने के लिए वह वर्षों तक लगातार एक २ इंच कुरबान होता चला आया है और इस लम्बे काल में उसे एक २ बार जो अज़ाब मिला है, उसके मुक़ाबिला में किसी के लिए घड़ी भर की फांसी की तकलीफ़ कुछ हक़ीक़त नहीं रखती, उसका यह कुल त्याग क्या निरर्थक प्रमाणित होगा? क्या नेचर में उसका यह निराला आविर्भाव निष्फल जाएगा? क्या उसके इस अनोखे आविर्भाव की असलियत कभी प्रगट नहीं होगी? क्या उसके निराले मिशन का तत्व कभी किसी पर न खुलेगा? क्या यह दुनिया हमेशा हि उससे अपना मुँह मोड़ रक्खेगी, और उसे केवल घृणा की दृष्टि से देखेगी?

क्या सुनसान रातों और एकान्त समय के उस के कुल आंसू यूहीं वृथा जाएंगे, और उस के हृदय की गहरी बिलबिलाहट कुछ फल न लाएगी ? क्या देवत्व का जो बीज उस ने बोया है, वह नष्ट हो जाएगा ? क्या उसके दुखिया दिल पर उसके सच्चे अनुगत बनकर मरहम लगाने वाले जन पैदा न होंगे ? क्या इस पाप भरी दुनियां में उसका कोई सच्चा प्रेमक और सच्चा सेवक न बनेगा ? क्या जिस "कुरबान गाह" में उसने अपने आपको पूर्णतः भेंट किया है, उस में उस के दृष्टान्त से और लोग अपने आपको भेंट न धरेंगे ? क्या जिस निराले मिशन के लिए वह फ़ना हुआ है. उसके लिए फ़ना होने की ग़रज़ से और सैंकड़ों जन खड़े न होंगे ? क्या जिन के बचाने और उद्धार करने और जिन्हें धर्म्म जीवन की सच्ची बरकतों से मालामाल करने के लिए उस ने अपने आपको सदक़े चढ़ाया है, वह न बचेंगे और वह बरकतें न हासिल करेंगे ? क्या जिस देवत्व की धारा को उसने जारी किया है, उसे जारी रखने और लगातार बढ़ाने और फैलाने के लिए दिनों दिन अधिक से अधिक आत्मा न पैदा होंगे ? क्या मेरा मिशन नेचर के विकासकारी नियम के अनुसार नहीं ? क्या वह कभी नष्ट हो सकता है, अथवा उन्नति करने और फैलने के बिना रह सकता है ? हे आकाश तू बोल ! ! हे पृथिवी तू साक्षी दे ! ! !"

यह मेरे मुंह के शब्द न थे, किन्तु यह मेरे आत्मा की विलक्षण देवबाणी थी, जो मेरे सरल हृदय के प्रबल वेग से निकली थी। सती सीता जब बाल्मीक जी के आश्रम से श्री रामचन्द्र के दरबार में आई थी, और उस के शुद्ध चरित्र पर मिथ्या कलंक का अभियोग लगाया

गया था, और उसका कोमल हृदय इस मिथ्या अभियोग के आघात् से टुकड़े २ होकर अत्यन्त आलोड़ित हो रहा था, तब उस असहाय अबला ने अश्रुपात करते २ जमीन की ओर देखकर और अपने विह्वल हृदय और सतीत्व भाव की प्रबल शक्ति से परिचालित होकर यह कहा था, कि "यदि मैं सती स्त्री हूं तो मेरे सतीत्व के बल से हे धरती माता तू फट जा और मैं तेरी गोद में घुसकर सदा की समाधि ले लूं !!" सती सीता की इस कथा को लिखते २ मेरी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है। मैंने भी इस महा दुखदाई विलाप के समय अपने अत्यन्त आलोड़ित हृदय के साथ धरती के भिन्न आकाश को भी अपनी साक्षी करके अत्यन्त करुणा उत्पादक शब्दों में बिलबिला कर यह कहा था :—

"क्या मेरा मिशन नेचर के विकासकारी नियम के अनुसार नहीं ? क्या यह कभी नष्ट हो सकता है अथवा उन्नति करने और फैलने के बिना रह सकता है। हे आकाश तू बोल !! हे पृथिवी तू साक्षो दे !!!"

इन धर्म्म बल से परिपूर्ण शब्दों से मानों धरती हिल गई, आकाश कांप उठा और मेरे प्रश्न के उत्तर में गुप्त स्वर में यह गूंज उत्पन्न हुई :—

"निश्चय तेरा मिशन नेचर के विकासकारी नियम के अनुसार है। धैर्य्य रख, और विश्वास कर, कि वह उन्नति करने और फैलने के बिना नहीं रहेगा, हम दोनों हि इस बात की सच्ची साक्षी देते हैं।"

यह साक्षी निश्चय सत्य थी। भयानक प्रतिकूल

घटनाओं के साथ २ अनुकूल घटनाएं भी पैदा होती गईं। मेरा जीवन व्रत सम्बन्धी कार्य भी बढ़ता रहा। और पिछले तेरह साल में उसने जिस क़दर आश्चर्य्य जनक उन्नति की है, उसका हाल किसी जानने वाले से छिपा हुआ नहीं।

८—मेरा घोर संग्राम और परिश्रम

वर्षों से घन घोर युद्ध हो रहा है, विरोधी दल दिनों दिन बढ़ रहा है। मैं भी अपने देवशस्त्रों के साथ मैदान में डटा हुआ हूं अपने उपदेशों, अपने लेखों, अपने व्याख्यानों, अपने कथनों, अपनी शुभकामनाओं आदि के द्वारा अपने देव प्रभावों के बाणों को चारों ओर छोड़ रहा हूं। मेरे यह तीक्ष्ण बाण एक व दूसरे जन को घायल करते हैं। घायल होने पर उनके आत्माओं ने मिथ्या और पाप की धातु निर्मित जो जिराबकतर पहनी हुई थी, उसमें सूराख हो जाते हैं और उन सूराखों से मेरे जीवन्त धर्म्म की कुछ किरणें उनके अन्धकार को दूर करती हैं, और वह मुझे उलटे रूप में देखने के स्थान में किसी अंश में सत्य रूप में देखने का अवसर पाते हैं। वह मुझे उस समय हितकर्ता रूप में अवलोकन करते हैं। मेरे प्रति उनके भीतर एक प्रकार की श्रद्धा पैदा होती है, और वह अपने आप मेरी ओर खिंच कर चले आते हैं, और मेरा पक्ष ग्रहण करते हैं। मेरा पक्ष ग्रहण करने से उनकी भी विरोधिता आरम्भ होती है। उधर विरोधी जन सताते हैं, इधर मेरे पास आने पर यद्यपि उनके कितने हि मोटे २ कुसंस्कार और पाप तो छूट जाते हैं, परन्तु जिन कितने हि सुख अनुरागों के वह पहले

से दास और उनके कारण ईर्षा, द्वेष, अहंकार आदि के अधीन थे, उन पर आघात लगने से उन में से कितने हि जन मुझे फिर उलटे रूप में देखने लगते हैं, । फिर मुझ से फटकर बाग़ी हो जाते हैं । और कई कृतघ्न इन में से विरोधी जनों से मिलकर उन से भी बढ़कर मुझे सताने और हानि पहुंचाने के लिए कमर कस लेते हैं । पारिवारिक जनों की नाना अबोधताओं और अवज्ञाओं से नाना प्रकार के अलग कष्ट मिल रहे हैं। अपने और अपने पारिवारिक जनों के भिन्न, कई अनुयाई जनों के भरण पोषण का भी मुझ पर बोझा है । जंग के नाना सामानों के प्राप्त करने के लिए रुपए की सख्त ज़रूरत है । और यद्यपि सहायकारी नेचर के गुप्त कार्य्य से धन विषयक अभाव एक सीमा तक दूर होता है, परन्तु ऐसे महा कठिन संग्राम में मुझे सहानुभावी लोगों की जिस सहानु-भूति और विश्वास पात्र लोगों की जिस विश्वस्तता की आवश्यकता है, वह सहानुभूति और विश्वस्तता वा वफ़ा-दारी प्राप्त नहीं । मैं प्रकाशतः कुछ जनों को अपने पक्ष में देखकर भी किसी को अपना नहीं समझ सकता हूं। मैं किसी पर भरोसा नहीं कर सकता हूं । मैं जिन २ जनों के हृदयों में अपनी देव ज्योति और अपना देव तेज पहुंचाकर उन में उच्च परिवर्तन लाने के लिए अति कठिन संग्राम करता हूं और अपने नाना साधनों और उपदेशों आदि के द्वारा घंटों तक (दिन में भी और रात में भी) अपना निहायत कीमती खून और अपनी निहायत कीमती ताक़तें उन पर खर्च करता हूं वह नेचर की अधोगति के क्रम में अपने पूर्वजों से ऐसी रद्दी प्रकृति लेकर उत्पन्न हुए हैं, कि उन में कोई लगातार उच्च परिवर्तन नहीं होता, और कुछ देर के बाद उनकी उन्नति का कोई श्रम नहीं

चलता। और उन पर मेरा अधिकांश परिश्रम निष्फल जाता है। परन्तु मैं हित के नाना अंगों का पूर्ण अनुरागी, अपने परिश्रम की निष्फलता की कुछ भी परवाह न करके, और इससे हत उत्साह न होके, फिर भी उन्हें पतन से निकालने और विविध प्रकार से उन्नत करने और योग्य बनाने के लिए लगातार परिश्रम किए जाता हूं। जिस देश में लाखों लोग उजरत या तनख्वाह लेकर भी जो काम वह कर सकते हैं, उसके करने से जहां तक हो, जी चुराते हों, और यथा सम्भव उसे क्या यथेष्ट रूप में और क्या नियत समय में, और क्या भली भान्त, पूरा करना न चाहते, और न करते हों, जब कि वह उसके द्वारा धन लाभ करने की पूर्ण लालसा भी रखते हों; उस देश के ऐसे हि जनों में से जो जन एक ओर आत्म—हित और दायत्व बोध विहीन हों, और दूसरी ओर धन लालसा भी न रखते हों, वह केवल मेरे प्रभावों से किसी क्षणिक उच्छ्वास से परिचालित होकर मेरे जैसे पूर्ण व्रत धारी के पास आकर क्योंकर ज़िम्मेवारी, उत्साह और परिश्रम के साथ कोई काम अधिक काल तक पूरा कर सकते हैं? नहीं कर सकते। और केवल यही नहीं, कि वह ऐसा नहीं कर सके, किन्तु अपनी नाना नीच गतियों के द्वारा मेरे लिए नाना प्रकार से हानिकारक बनते रहे हैं।

एक ओर मुझे अपने जीवन व्रत सम्बन्धी नाना कामों के लिए जिस प्रकार के योग्य जनों की ज़रूरत थी, वह यह देश पूर्ण नहीं कर सका; दूसरी ओर जो अयोग्य जन मुझे प्राप्त हुए हैं, वह नाना नीच भावों के अधीन और उच्च भावों से विहीन होने के कारण, केवल यही नहीं, कि मेरे जीवन व्रत सम्बन्धी विविध कामों को पूरा करने

के योग्य नहीं हैं, किन्तु अपनी नाना विश्वासघातक क्रियाओं और अवज्ञाओं से मेरे लिए महा दुःखदाई और हानिकारक बन रहे हैं। इसके भिन्न मुझे उनकी आत्मिक पालना में भी बहुत दुखदाई संग्राम करना पड़ता है। ऐसे लोगों से यद्यपि बहुत मोटे २ पाप अवश्य छूट गए हैं, परन्तु और नाना प्रकार के कितने हि पापों का बोध न होने से, वह मुझे अपनी एक २ नीच क्रिया के द्वारा बहुत दुख और क्लेश पहुंचाते रहते है। कर्तव्य कर्म्म विषयक विविध प्रकार की त्रुटियों और स्वार्थ और घमंड आदि विषयक विविध प्रकार की नीच गतियों के द्वारा, उन्हों ने लगातार वर्षों तक मुझे जिस २ प्रकार की यंत्रणा दी है, उसको मैं ही जानता हूं। ऐसे एक २ सेवक और उसके भिन्न एक २ और सम्बन्धी ने अपनी एक वा दूसरी नीच क्रिया से अनेक बार मुझे इतना आघात् और कष्ट पहुंचाया है, कि उससे मैं बिन पानी मछली की न्याईं तड़पता रहा हूं और कितनी हि बार यह यंत्रणा इतनी असह्य हो गई है, कि मैं ने उस समय यह चाहा है, कि यदि मेरा यह शरीर छूट जाए तो अच्छा हो। इस दीर्घ काल में मुझे इस अधोगति प्राप्त भारत-भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं मिला, कि जिसको मैं सदा के लिए अपना मित्र और बन्धु अनुभव कर सकता, जिस पर पूर्ण विश्वास कर सकता, और सदा के लिए उसे अपना शुभाकांक्षी जान सकता। तब सोचा जा सकता है, कि मेरा यह संग्राम कितना असाधारण संग्राम रहा है। मैंने इस महा घोर संग्राम में पड़कर एक २ समय में अपने आपको जहां चारों ओर से सताने और दुख देने वाले जनों से घिरा हुआ पाया है, वहां लाखों मनुष्यों से भरी हुई इस भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं देखा, कि जिसके

सन्मुख मैं अपना भली भान्त हृदय भी खोल सकूं, और अपने लिए कोई यथेष्ट सहानुभूति लाभ कर सकूं। मेरी प्रकृति तक पहुंचकर मेरी अवस्था को उपलब्ध करने वाला कोई न था। फिर मुझ पर जिन बहुत से कामों का बोझा पड़ना उचित न था, वह कमर तोड़ बोझा मेरे ऊपर ही पड़ता रहा है। एक २ बार मैं बहुत बीमार हो जाता हूं, फिर भी मुझे आराम लेने का मौका नहीं। चिकित्सक कहते हैं, कि मुझे अपने रोग की निवृत्ति और बल की प्राप्ति के लिए आराम अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु मेरे हालात मुझे आराम नहीं लेने देते। मेरे विरोधी भी मुझे किसी तरह चैन से रहने नहीं देते। उनकी ओर से आघात पर आघात पहुंचाए जाते हैं। वह मेरे मिशन के नष्ट करने के लिए सर्वदा कमर कसे खड़े हैं। फिर भी मैं अपने अलौकिक देव बल के द्वारा इन सब महा विपदों और कठिनाईयों का मुक़ाबला किए जाता हूं। अब यदि इन कुल बातों को सन्मुख लाकर मेरे संग्राम को उपलब्ध करना किसी के लिए सम्भव हो, तो वह अनुमान कर सकता है, कि जैसे मेरा जीवन व्रत अद्वितीय था, वैसे हि उसके पूर्ण करने के लिए मेरा संग्राम भी आज तक अद्वितीय रहा है।

व्रत ग्रहण करने के पहले काल को छोड़कर व्रत ग्रहण करने के बाद आज तक पच्चीस वर्ष में मैंने तुम सब के और नाना प्रकार के अन्य अस्तित्वों के उद्धार और कल्याण के लिए क्या २ महा त्याग किया है, क्या २ दुःख, क्या क्या क्लेश और अजाब सहे हैं, क्या क्या हानियां उठाई हैं, इन पच्चीस वर्षों में सख्त बीमारी वा किसी लाचारी के भिन्न मैंने एक दिन की भी छुट्टी लेने

के बिना लगातार हर रोज़ दिन में और अनेक बार बड़ी बड़ी रात तक काम किया है। इस लम्बे काल में मैंने विज्ञान-मूलक फ़िलासफ़ी और विज्ञान-मूलक धर्म्म, और धर्म्म-मूलक फ़िलासफ़ी के महा गूढ़ तत्वों के अनुसंधान, देव शास्त्र की रचना, उर्दू, अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषा में प्राय: डेढ़ सौ पुस्तकों और सैंकड़ों लेखों के लिखने और कई मासिक पत्रों और अन्य समाचार पत्रों के सम्पादन करने, हज़ारों उपदेशों और व्याख्यानों के देने, विरोधियों के साथ नाना प्रकार का मुक़ाबिला करने, सामाजिक कितनी हि इन्स्टीटयूशनों के स्थापन और परिचालन करने, धर्म्म प्रचार के काम को चलाने और बढ़ाने के लिए कर्म्म-चारियों आदि को नाना प्रकार की शिक्षा देकर तैयार करने, समाज के नित्य बढ़ते हुए नाना प्रकार के कामों के निबटाने, अपने अनोखे और नए मिशन के सम्बन्ध में सैंकड़ों प्रकार की उलझनों के सुलझाने, दिक़्क़्तों और झगड़ों के दूर करने, जंग के लिए नाना प्रकार के ज़रूरी सामानों के हासिल करने, लायक़ और काफ़ी जनों के न मिलने से जो काम औरों के करने का था, उसे मजबूर होकर खुद करने, सेवक सेवकाओं की अवस्था की देख भाल रखने, हेड आफ़िस सम्बन्धी विविध कामों की जांच पड़ताल और उनके परिचालन करने, और इसी प्रकार के और बहुत से कार्य्यों के करने में जितना परिश्रम किया है, उसका कौन अनुमान कर सकता है? रोगी से रोगी अवस्था में भी अपने हित-अनुराग से परिचालित होकर, हां अनेक बार अन्धा होकर, मैंने जिस प्रकार अपनी जान पर खेल कर औरों के हित के लिए सोचा और काम किया है, उसे कौन जान सकता है? और फिर जिन के भले के लिए यह सब कुछ महा परिश्रम और महा त्याग

हुआ है, उन्हीं में से जब लोग मेरी विशेष प्रकृति के विरुद्ध अपनी नीच वा आसुरिक प्रकृति रखकर मेरे समीप न आते हों; मुझे मेरे सत्य रूप में देखने की योग्यता न रखते हों; नाना हित पाकर भी मेरे प्रति कृतज्ञ भाव के उत्पादन और प्रदर्शन करने के अयोग्य हों; और कई जन कृतघ्नता के प्रकाश के लिए हर समय तैयार रहते हों; मुझे उचित सन्मान देना तो कहीं रहा, साधारण भद्रता-मूलक सन्मान देना भी जिनके लिए अनेक बार कठिन हो, जो मेरी समाज में अपनी उमर का बहुत बड़ा भाग खर्च करके भी, और मेरे घर में हि जन्म लेकर और पल कर भी, अपनी नीचता पर आघात के लगने से मुझे उलटे रूप में देखने लगते हों, आकर्षण के स्थान में मेरे प्रति घृणा के अति बुरे और विनाशकारी भाव से भर जाते हों; और कोई जन द्वेष भाव से भर कर दिल २ में मेरी मौत की भी कामना करने लगते हों; जिन समीपी जनों के साथ रहता हो, उनके साथ दिल खोल कर साधारणतः कभी बात चीत तक न हो सकती हो; सख़्त से सख़्त परिश्रम के बाद जब जिसम और दिमाग़ किसी तरह काम करने के लायक़ न रहा हो, तब भी उस की तफ़रीह के लिए प्रायः कोई सोशियल सामान प्राप्त न हों, और कोई हमदर्दी न मिलती हो; दूसरी ओर बाहर के विरोधी लोगों से लगातार अलग फिटकार और पीड़ा मिलती हो; उन में रहकर और उन्हीं के हित में रत रह-कर, मैंने अपने जीवन व्रत के जो पच्चीस साल व्यतीत किए हैं, उन में मेरी छवि को जैसी कुछ कि वह तुम्हारी योग्यता के अनुसार तुम्हारे सामने आ सकती हो, अपने सन्मुख लाओ। सोचो कि इतने काल से ऐसे महा संग्राम

में रहकर यदि अब तक मेरा यह स्थूल शरीर बाक़ी है, तो क्या यह एक अलौकिक घटना नहीं ? क्या यह सच नहीं, कि मैं इस महा संग्राम में पड़कर एक बार नहीं, किन्तु अनेक बार मृत्यु के समीप पहुंच गया हूं ? क्या यह सच नहीं, कि मैं बहुत वर्षों से ऐसे कई रोगों से रोगी हूं, कि जिन के कारण वर्ष के प्रायः सारे दिनों में हि मुझे दवा खाने, पीने और कभी लगाने और डालने की ज़रूरत रहती है।

६—मेरे निराले संग्राम के निराले फल।

पिछले पच्चीस साल के मेरे इस कठिन और घोर संग्राम के द्वारा, अब तक क्या २ फल उत्पन्न हुए हैं, उनका बतलाना इस समय मेरा काम नहीं, किन्तु तुम लोगों का काम है। क्या आज के इस विशेष दिन में तुम उन फलों को अपने और सैकड़ों अन्य नर नारियों के जीवन में नहीं देखते ? क्या उन्हें समाज की नाना इन्सटीटयूशनों में नहीं देखते ? क्या उन्हें नाना आश्रमों और स्कूलों की इमारतों में नहीं देखते ? क्या डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, मजिस्ट्रेट, वकील, ग्रेजुएट, सौदागर, कारख़ानेदार और रईस वग़ैरा क्लास में से जो लोग चन्द सालों के अन्दर समाज में आए हैं, उन में नहीं देखते ? क्या हमारे मासिक और पाक्षिक पत्रों में, समाज के विविध प्रकार के कामों की जो ख़बरें छपती रहती हैं, उन में नहीं देखते ? क्या हमारे यहां के कई प्रकार के फ़न्डों के लिए धन प्राप्ति में नहीं देखते ? क्या हमारे यहां हर साल नई से नई जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, और दिनों दिन हमारे साहित्य की

वृद्धि हो रही है, उन में नहीं देखते ? क्या यह सच नहीं, कि तुम में से जो जन पहले शराबी थे, व्यभिचारी थे, मांसाहारी थे, चोरियां करते थे, रिश्वतें लेते थे, जुआ खेलते थे, पशु मारते थे और जिनके घरों में कोई कन्या जीने नहीं पाती थी, ऐसे सब जनों के जीवन में मेरे सम्बन्ध के द्वारा उच्च परिवर्तन के आने से यह सब पाप और महा पाप दूर हो गए हैं, तुम्हारी गति बदल गई है, तुम्हारे नीच सम्बन्ध बदल गए हैं, तुम्हारे घरों का नया रूप होगया है। जहां पहले शराब की भट्ठियां चढ़ी रहती थीं, वहां अब धर्म्म के साधन होते हैं। जिन स्थानों में अब धर्म्म साधनों के लिए स्थान बन गए हैं, उन में पहले ऐसे कोई स्थान नहीं थे, जिन घरों की स्त्रियां और लड़कियां अब धर्म्म सम्बन्धी विविध पुस्तकें पढ़ती हैं, वह पहले मूर्खता में पड़ी हुई थीं। जो पुरुष और स्त्री नाना प्रकार के मिथ्या और हानिकारक विश्वासों और कुसंस्कारों में फंसे हुए थे, वह अब उन से उद्धार पा गए हैं। कई जगहों में सेवकों के लड़के लड़कियों के लिए स्कूल खुल गए हैं। समाज में ऐसी स्त्रियां बहुत थोड़ी मिलेंगी, कि जो कुछ लिखना पढ़ना न जानती हों। जिन घरों से अब उच्च भाव उत्पादक संगीतों की ध्वनि निकलती है, उन घरों से पहले विवाद और कलह की हाय २ उठती रहती थी। जिन घरों से अब धर्म्म और सद् भावों की महक आ रही है, वह घर पहले नरक के सदृश पाप और दुखों के स्थान बने हुए थे। जो जन अब औरों की सेवा और शुश्रूषा करते रहते हैं, वह पहले नीच स्वार्थ के बस हो कर किसी का कोई भला करना नहीं चाहते थे, यहां तक कि अपने पारिवारिक सम्बन्धियों का भी कभी कोई शुभ नहीं सोच सकते थे, जो जन अब

परिश्रमी बनकर विविध प्रकार के भले काम करते हैं, उनमें से कितने हि पहले निकम्मे पड़े रहते थे और कुछ काम नहीं करते थे। यह सब फल क्योंकर उत्पन्न होते, यदि मैं इस महा संग्राम में न पड़ता, और उस में पड़कर वर्षों तक नाना प्रकार के उत्पीड़न और दुःखों और क्लेशों, शारीरिक रोगों और अन्यान्य हानियों को अपने ऊपर न लेता ? और अब तुम अपने जीवनों के परिवर्तन में मेरी जिस उद्धारिणी और मंगलकारी शक्ति का कार्य्य देखकर विस्मित होते हो, उसका यह सब आश्चर्य्य-जनक कार्य्य न होता। क्या यह सच नहीं, कि तुम्हारे जीवनों में मेरी देव ज्योति और मेरे देव तेज के द्वारा जो शुभ परिवर्तन हुआ है, वह मेरे साथ जुड़ने से पहले तुम्हारे भीतर कोई उत्पन्न नहीं कर सका ? तुम्हारे मां बाप आदि सम्बन्धी नहीं कर सके, बिरादरी और सम्प्रदाय के लोग नहीं कर सके। कोई धर्म्म ग्रन्थ नहीं कर सका; कोई बड़े से बड़ा कल्पित उपास्य देवता भी नहीं कर सका; हां, और कोई भी नहीं कर सका ? फिर इस सत्य को सन्मुख रखकर तुम लोग भली भान्त समझ सकते हो कि मेरा यह महा संग्राम निष्फल नहीं गया, किन्तु उसके द्वारा वह महत् और शुभ फल उत्पन्न हुए हैं, कि जिन्हें देख २ कर मैं और तुम आज के इस महा ब्रत के शुभ अवसर पर एकत्र होकर धन्य २ हो रहे हैं। इसीलिए जहां एक ओर मेरा यह महा संग्राम निराला है, वहां दूसरी ओर उसके द्वारा मैंने जो जय लाभ की है, वह भी निराली है। इस महा संग्राम में निश्चय सत्य और शुभ की जय हुई है। मेरा कष्ट सहना लाखों के लिए हित का मार्ग खोल देने का हेतु हुआ है। सैकड़ों के भीतर श्रद्धा का सात्विक अंकुर उत्पन्न हुआ है। कितनों में कुछ न कुछ परहित भाव

जागा है। कितने हि जन मेरे जीवन ब्रत के लक्ष्य में कुछ न कुछ, हां कई एक बहुत कुछ सहायकारी हो रहे हैं। और इस सब के द्वारा अब तक जो कुछ हित और कल्याण आया है, और आगामी काल में आएगा, वह अनुमान से बाहर है। अतएव इस शुभ अवसर पर मेरे भिन्न तुम सब भी निश्चय क्या बूढ़े, क्या प्रौढ़, क्या जवान, क्या स्त्री, क्या पुरुष, अपने २ जीवनों में और क्या समाज के विविध अंगों में इन नाना प्रकार के शुभ फलों को देखकर धन्य २ अनुभव करने के बिना नहीं रह सकते।

१०—विज्ञान-मूलक धर्म्म तत्वों और साधनों का विकास और प्रचार

सन् १८९४ के आखरी दिनों में बहुत से आन्तरिक संग्राम के बाद मेरा ईश्वर विषयक मिथ्या विश्वास चला गया। मेरे धर्म्म मत की ईश्वर विश्वास मूलक सारी बुनियाद नष्ट होगई। सत्य ज्ञान के अनुसन्धान में अब अन्ध विश्वास का कुछ दख़ल न रहा। विज्ञान विषयक अनुराग के सर्वाङ्ग रूप से विकसित हो जाने से सत्य ज्ञान के अनुसन्धान में वैज्ञानिक विधि का मुझ पर पूर्ण अधिकार होगया। वैज्ञानिक पूर्ण विधि के अनुसार जो ज्ञान सत्य प्रमाणित हो, वही ग्रहणीय रह गया। प्राचीन वा नवीन, प्रचलित वा अप्रचलित आप्त वा अनाप्त, स्वदेशीय वा विदेशीय आदि के विचार से कोई बात विश्वसनीय न रही। किन्तु जो कुछ वैज्ञानिक पूर्ण विधि के द्वारा अनुमोदित और समर्थित हो, वही सत्य ज्ञान ग्रहणीय

ग्रौर उसी को ढूंढना ग्रौर प्राप्त करना मेरा सार लक्ष्य बन गया। "कल्पना-मूलक विश्वास नहीं, किन्तु विज्ञान मूलक सत्य ज्ञान" मेरे हृदय का मंत्र जप होगया। ग्रन्ध विश्वास के सब बन्धन टूट गए, ग्रौर इस प्रकार मेरा ग्रात्मा सत्य ज्ञान में सदा उन्नत होने के योग्य बन गया। इस काल से लेकर मेरी धर्म्म शिक्षा की बुनियाद नेचर के ग्रटल नियमों की ग्रटल चट्टान पर स्थापित होगई। इसी साल मेरे जीवन व्रत के १२ वर्ष पूरे होगए। मेरे यह बारह वर्ष बहुत सी बातों के विचार से बिलकुल निराले संग्राम में व्यतीत हुए। मेरी उमर के यह सब साल ईश्वर विश्वास मूलक धर्म्म प्रचार ग्रौर ग्रपने भान्त २ के ग्रनुयाईयों के सम्बन्ध में नाना प्रकार के बहुत काल से नए से नए तजरुबों के हासिल करने में खर्च हुए। तेरवें साल से मेरे जीवन के इतिहास में बिलकुल एक नया युग ग्रारम्भ हुग्रा। तब से लेकर ग्रब तक तेरह साल ग्रौर भी चले गए हैं। इन तेरह सालों के निराले संग्रामों की ग्रति विचित्र कहानी है, कि जो बहुत लम्बी होने के कारण इस ग्रवसर पर वर्णन नहीं हो सकती। जीवन व्रत ग्रहण करने के ग्रनन्तर बारह वर्ष तक मेरा ईश्वर-विश्वास-मूलक ग्रौर उसके ग्रनन्तर तेरह वर्ष तक विज्ञान-मूलक धर्म्म का साधन ग्रौर प्रचार रहा है। यही पिछले तेरह साल हैं, कि जिन में मैंने ग्रपने ग्रात्मा में जहां ग्रपेक्षाकृत बहुत ग्रधिक विकास लाभ किया है, वहां देव समाज ने भी बहुत ग्राश्चर्य्य-जनक उन्नति की है।

ग्राज के इस विशेष ग्रवसर ग्रौर शुभ दिन में मैं एक वार फिर उसी २० दिसम्बर को स्मरण करता हूं, कि जिस दिन ग्राज से पच्चीस वर्ष पहले इसी शहर में मैंने ग्रपना

निराला जीवन ब्रत ग्रहण किया था, और अपने इस निराले ब्रत के उस निराले संग्राम को भी स्मरण करता हूं, जिसके भीतर से मैं आज तक गुज़रा हूं, और मैं अपनी आयु के इस बहुत बड़े काल को सन्मुख लाकर इस समय जितना धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं उसे मेरे भिन्न कोई और उपलब्ध नहीं कर सकता। मैं आज इस विशेष दिन में अपने आपको इसलिए बहुत विशेष और गहरे रूप से धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं, कि इस काल में

(१) मेरे आत्मा ने महा अद्भुत और अति विचित्र उच्च परिवर्तन अथवा विकास लाभ किया है।

(२) मेरे आत्मा में सत्य अनुराग विषयक नाना अंग विकसित हुए हैं।

(३) मेरे आत्मा में हित अनुराग विषयक नाना अंग विकसित हुए हैं।

(४) मेरे आत्मा में असत्य विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना घृणा शक्तियां उन्नत हुई हैं।

(५) मेरे आत्मा में अहित विषयक नाना अंगों के सम्बन्ध में नाना घृणा शक्तियां उन्नत हुई हैं।

(६) मेरे आत्मा ने देवकोष के इन नाना अंगों में विकास पाकर अपनी गठन में पूर्णता लाभ की है।

(७) मैंने पूर्णाङ्ग देव जीवन को प्राप्त होकर जिस अद्वितीय देव ज्योति और जिस अद्वितीय देव तेज को विकसित किया है, उस देव ज्योति और उस देव तेज को मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा ने

नहीं उत्पन्न और नहीं प्रगट किया ।

(८) मैंने सत्य वा देव धर्म्म की विज्ञान-मूलक वह सत्य आधार भूमि देखी और अविष्कार की है, कि जिसे मेरे भिन्न आज तक इस पृथिवी में किसी और आत्मा ने नहीं देखा और नहीं ज़ाहर किया ।

(९) मैंने आत्मा की उसके पतनकारी नीच अनुरागों और नीच घृणाओं से सत्य मोक्ष और उस में उच्च जीवन के विकास के सम्बन्ध में जिस सत्य साधन प्रणाली की शिक्षा दी है, वह आज तक मेरे भिन्न इस पृथिवी में किसी और ने नहीं दी ।

(१०) मैंने सत्य वा देव धर्म्म की शिक्षा के सम्बन्ध में जैसा देव शास्त्र रचा है, वैसा धर्म्म शास्त्र आज तक इस पृथिवी में किसी मनुष्य वा किसी कहलाने वाले ईश्वर वा देवता आदि ने नहीं रचा ।

(११) मैंने इस सत्य वा देव धर्म्म के क्रमशः प्रवर्तन के लिए जिस नमूने की निराली धर्म्म समाज स्थापन की है, वैसी समाज इस पृथिवी में किसी ने स्थापन नहीं की और कहीं वर्तमान नहीं ।

(१२) मैंने आत्मा की गठन और उसके जीवन के पतन वा विनाश और उससे उसकी सत्य मोक्ष और उस के उच्च विकास के सम्बन्ध में जिन नाना अमूल्य तत्वों को देखा और प्रगट किया है, उन्हें इस पृथिवी में किसी और ने नहीं देखा और नहीं प्रगट किया ।

(१३) मैंने ऐसे देश में जन्म लिया है, कि जिसकी, वा यों कहो, कि एशिया के बहुत से देशों की सुख और

स्वार्थ-मूलक फ़िलासफ़ी, और उसके नाम से झूठे धर्म्म साधनों ने यहां के निवासियों को नाना हितकर बोधों में विकसित करने के स्थान में उन्हें विश्वगत् नाना सम्बन्धों से काटकर उनके कितने हि अच्छे बोधों के नाश करने, और उन्हें अधिक से अधिक बोध शून्य और जड़वत बनाने में सहाय की है, और मैंने उसके ठीक विरुद्ध अपनी उच्च विकास-मूलक और इसीलिए सत्य और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी के अनुसार उन्हें न केवल मनुष्य-जगत् के नाना सम्बन्धियों के सम्बन्ध में, किन्तु उसके भिन्न पशु, उद्भिद् और भौतिक जगत् के सम्बन्धियों के साथ भी उनके गहरे सम्बन्ध को उपलब्ध कराने, और इन सम्बन्धों में उच्च वा नीचगति के द्वारा आत्मा के बनने और बिगड़ने का सत्य ज्ञान देकर यहां के महा बेसुध आत्माओं को फिर से जाग्रत करने और उन में नए हितकर बोधों को उत्पन्न करके, उन्हें नाना प्रकार की नीचताओं से निकालने और नाना प्रकार से उच्च बनाने का महा सुन्दर और बांछनीय अधिकार लाभ किया है।

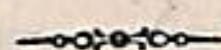
(१४) मैंने क्या अपने देश, और क्या पृथ्वी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य आत्मा के सम्बन्ध में वह विज्ञान-मूलक सत्य फ़िलासफ़ी दी है, और उस के लिए धर्म्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, कि जिससे सब श्रेणियों और सब अवस्थाओं के अधिकारी लोग, चाहे वह पुरुष हों वा स्त्री, ग्रहण करके अपना २ सब प्रकार का कल्याण साधन कर सकते हैं।

(१५) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकास तत्व-मूलक

वह सत्व और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी प्रगट की है, और उसके लिए धर्म्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, जिसे ग्रहण करने से जहां एक ओर वह अपने आत्मा के पतन, और ऐसे पतन-मूलक नाना दुःखों से अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहां उच्च विकास को प्राप्त होकर विद्या, विज्ञान, साहित्य शिल्प और वाणिज्य आदि को उन्नत करके सच्ची सभ्यता में भी दिनों दिन उन्नत हो सकते हैं।

(१६) मैंने अपने देश और पृथिवी के अन्य देशों के निवासियों के लिए मनुष्य जीवन की विकास-तत्व-मूलक वह सत्य और विज्ञान-सम्मत फ़िलासफ़ी प्रगट की है, और उसके लिए धर्म्म का वह आदर्श, और उसकी प्राप्ति के लिए उस साधन प्रणाली का प्रकाश किया है, कि जिसके सत्यों को उपलब्ध और ग्रहण करके वह कल्पना मूलक सब प्रकार के मिथ्या मतों के महा हानिकारक जाल, और मिथ्या मत सम्भूत नाना महा हानिकारक कुसंस्कारों और गृह और सामाजिक अनुष्ठानों और साम्प्रदायिक विद्वेष और घृणा भावों से मुक्त होकर परस्पर के लिए उत्पीड़नकारी बनने के स्थान में परस्पर को शुभ दृष्टि से देखने, और परस्पर के शुभ में सहायकारी बनने के योग्य बन सकते हैं। और मनुष्य समाज के भिन्न पशु आदि जगतों के सम्बन्ध में भी मिथ्या धर्म्म मतों की अहितकारी शिक्षा से इस समय तक जो २ अत्याचार जारी हैं, और हानि हो रही है, उससे भी उनकी रक्षा हो सकती है, और उनके लिए भी नाना प्रकार के हित का द्वार खुल जाता है।

११–धन्य २ और कृतार्थ बोध ।



इस सब महा दान के द्वारा आज तक मैं विश्वगत जिस जिस जगत के सम्बन्ध में जहां तक और जो २ कुछ सत्य और शुभ लाने और फैलाने के योग्य हुआ हूं; जहां तक मैंने अपने इस परम लक्ष्य की पूर्ति में सब प्रकार के भयानक से भयानक उत्पीड़न, अत्याचार, दुःख और हानियां सहके, अपने इस अद्वितीय मंत्र को, कि "सत्य, शिव सुन्दर हि मेरा परम लक्ष्य होवे, जग के उपकार हि में जीवन यह जावे" सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है; जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे परिवारों में से नाना प्रकार के कुसंस्कारों; पापों, बुराईयों और हानिकारक प्रथाओं को नष्ट करके, तुम सब को उन से मुक्त करने के योग्य हुआ हूं; जहां तक तुम्हारे और तुम्हारे पारिवारिक जनों के हृदयों में शुभ परिवर्तन लाकर मैं तुम्हारे दुःखों को दूर करने, तुम में से कितनों को अकाल मृत्यु से बचाने, और तुम में पवित्रता, सद्भाव और शान्ति स्थापन करने के क़ाबिल बना हूं; तुम्हारे लिए देव समाज और उस में नाना हितकर इन्सटीटयूशनें क़ायम करके तुम्हारी सन्तान और तुम्हारे अन्य सम्बन्धियों के हित और समृद्धि के साधन में कृतकार्य्य हुआ हूं; जहां तक तुम्हारे भिन्न और देव समाज से बाहर नाना मनुष्यों के लिए नाना प्रकार का हित लाने वाला बना हूं; जहां तक मनुष्य जगत के भिन्न पशु जगत के हज़ारों जीवों के प्राण बचाने और उनके दुःखों के कम करने, और उचित सुखों के बढ़ा देने का मुझे अधिकार मिला है; जहां तक पशु जगत् के भिन्न उद्भिद् और भौतिक जगतों के सम्बन्ध में भी मुझे विविध

प्रकार से सेवाकारी बनने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस सब दान और सेवा को सन्मुख लाकर आज मैं निश्चय अपने आपको अत्यन्त धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता हूं। इस समय मुझ से हित प्राप्त विश्व के सब जगत् मुझे प्रगट वा गुप्त रूप से जो कुछ शुभ आशीर्वाद दे रहे हैं, मेरे परलोक वासी सम्बन्धी और अन्य उपकृत जन मेरे लिए जो आशीष प्रदान कर रहे हैं उसे पाकर मेरे धन्य २ अनुभव करने की कोई सीमा नहीं रहती। मेरे इस महा त्याग और जीवन व्रत की सफलता से इस समय तक जो कुछ इस लोक और परलोक में हित आया है, और आगामी काल में उसके आने के लिए जैसा सच्चा और प्रशस्त मार्ग खुल गया है, उसे सन्मुख लाकर मैं निश्चय अपने जीवन को जैसा सफल और उसके लिए धन्य २ और कृतार्थ अनुभव करता और कर सकता हूं, उसका प्रकाश करना मेरे लिए इस समय असम्भव है।

परन्तु आज मैं यहां कहां होता, और मेरा यह अद्वितीय जीवन व्रत भी कहां होता, और उसे यथा सम्भव सफल करके मैं अपने आपको कृतार्थ भी क्योंकर अनुभव करता, यदि मेरे अस्तित्व के आविर्भाव में, विश्व के विकास क्रम में, मेरे पूर्व्वजों का प्रकाश न होता। मैं आज इस विशेष शुभ दिन में अपने इन पूर्व्वजों की लड़ी में अपने माता पिता और दादा दादी को विशेष रूप से धन्य २ कहता हूं, कि जिन का मेरे अस्तित्व में बहुत बड़ा हाथ है। मैं आज के इस शुभ अवसर पर, अपने सद्गुरु को विशेष रूप से धन्य २ कहता हूं, कि जो मुझे मेरी युवा अवस्था

के संकटमय काल में मेरे लिए धर्म्मपथ में कुछ दिनों तक बहुत अमूल्य हितकारी और सहायक प्रमाणित होने और इस पृथिवी के त्याग करने के बाद भी मेरा मंगल चाहने और करने के भिन्न मेरे नाना सम्बन्धियों का भी नाना प्रकार का मंगल साधन करते रहे हैं। मैं आज के इस शुभ अवसर पर अपने उन नाना इस लोक और परलोक वासी सम्बन्धियों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिनके द्वारा मुझे एक वा दूसरे प्रकार की कोई सहाय वा सेवा प्राप्त हुई है। मैं इस शुभ अवसर पर अपने देश और विदेश के उन नाना जनों को भी धन्य २ कहता हूं, कि जिस से मैंने कभी कोई शारीरिक शुश्रूषा, वा सेवा वा आर्थिक सहाय वा किसी प्रकार की मान्सिक अवगति, वा विद्या, वा कोई उच्च भाव वर्द्धक प्रभाव लाभ किया है। मैं इस शुभ अवसर पर मनुष्य-जगत् के भिन्न उन हितकर नाना दुग्ध प्रदाता और अन्य पशुओं, और नाना वृक्षों, और पौदों को धन्य २ कहता हूं, कि जिन्हों ने नाना प्रकार से मेरी सेवा की है। विशेष कर उद्भिद् जगत ने प्रति दिन नाना प्रकार से मेरी जितनी सेवा की है, उसके लिए मैं उसे जितना धन्य २ कहूं, उतना हि थोड़ा है। मैं इस शुभ अवसर पर भौतिक जगत की अमूल्य सेवा को भी सन्मुख लाता हूं, कि जिसकी सेवा के बिना मेरा एक मुहूर्त के लिए श्वास-प्रश्वास लेना तक सम्भव न था।

मैं इस शुभ अवसर पर अपने विरोधियों को साधारण रूप से, और उन में से कितने हि कृतघ्न जनों को विशेष रूप से स्मरण करता हूं; और यद्यपि मैं उनके अहितकारी और कृतघ्न रूपों को सन्मुख लाकर उन पर मोहित तो नहीं हो सकता, क्योंकि यह विश्व के विकासकारी नियम के विरुद्ध

है, परन्तु मैं हित अनुरागी होकर उनके हित के लिए अवश्य कामना कर सकता हूं, कि जो मंगल कामना मैंने उनके लिए इससे पहले भी अनेक बार की है। इन कृतघ्न जनों में से प्रत्येक ने हि मुझ से और मेरी समाज से सम्बन्ध स्थापन करके अपने जीवन के कई पहलुओं में कई प्रकार की भलाई, और अपनी पहली बुरी अवस्था से निकल कर बेहतरी हासिल की है। इन में से हर एक का हि विविधं प्रकार से उपकार हुआ है—उनकी चिट्ठियां, उनके लेख जो हमारे यहां मौजूद हैं, उनसे इस बात का भली भान्त प्रमाण मिल सकता है। उन्होंने भी अब तक पवलिक के सामने यह कहने की कभी दलेरी नहीं की, कि वह पहले अच्छे आदमी थे, और देव समाज स्थापक और देव समाज के असरों में रहकर बुरे बन गए। फिर क्या कारण है, कि वही लोग यहां से निकाले वा निकल जाने पर अपने हितकर्ताओं को भान्त २ की राक्षसी चालों से हानि पहुंचाने की कोशिशें करते हैं? इसके जवाब में बताया जा सकता है, कि जिस देश में चारों ओर ऐसे हज़ारों लोग मिलते हैं, कि जिन में अपनी हि जाई हुई असहाय सन्तान को भी मार देना उचित रहा है, और जहां एक २ बेटा अपने मां बाप को, और एक २ सगा भाई अपने एक २ सगे भाई को तरह २ से सताता और क्लेश पहुंचाता है, और कभी २ यहां तक अधम बन जाता है, कि उन में से किसी की हत्या तक कर देता है; उस में यदि धन वा वाहवा के लालच में पड़कर वा उनके भिन्न द्वेष वा ईर्षा के भाव से भरकर मुझे वा किसी और को कोई कृतघ्न तरह तरह की हानियां प ुचाने के लिए तैयार होजाए; तो इस में

कौनसी आश्चर्य्य की बात है ? परन्तु दुनिया का इतिहास बताता है, कि उत्पीड़नकारियों के उत्पीड़न से केवल यही नहीं, कि कोई शुभ काम उन्नति करने से रुक नहीं सकता; किन्तु अपेक्षाकृत और भी अधिक उन्नति करता है। और उसके सच्चे साथी ऐसी घटनाओं में उसके लिए और भी अधिक आत्म-त्याग करने के लिए इच्छुक बन जाते हैं; और पहले से अधिक उत्साह के साथ काम करते हैं। देव समाज की लगातार उन्नति भी इसी सत्य को प्रमाणित करती है।

१२—अन्तिम अपील और शुभ कामना।

तब मेरा यह अस्तित्व नेचर के लाखों वर्षों के जिस महा संग्राम का फल है, और इस अस्तित्व के द्वारा मैंने आप अद्वितीय संग्राम करके, अपने जिस अद्वितीय परम लक्ष्य को आज तक पूरा किया है, उसकी महिमा को जहां तक तुम उपलब्ध कर सकते हो, उसे आज के इस विशेष दिन में उपलब्ध करो। और जिस सब प्रकार से कल्याण-कारी सत्य वा देव धर्म्म के अलौकिक ज्ञान और उसकी प्राप्ति का मैंने तुम्हारे लिए अतुल्य और अमूल्य भंडार खोल दिया है, उससे लाभ उठाने से यथा साध्य उदासीन और वंचित न रहो। इसके लाभ से बढ़कर और कोई लाभ नहीं है। आत्मा के जीवन से बढ़कर और कोई चीज मूल्यवान नहीं है। एक यही धर्म्म वा आत्म धन हि ऐसा है, कि जिस को लाभ करके तुम उसे सदा अपने पास रख

सकते हो, और उस में विकसित होकर उच्च से उच्च लोकों में प्रवेश कर सकते हो, और अपनी आन्तरिक नीच सुख अनुराग-मूलक प्रकृति अथवा अपनी विनाशकारी गतियों और उसके नाना प्रकार के महा हानिकारक विकारों और दुःखों से मोक्ष लाभ कर सकते हो। और मृत्यु के उपस्थित होने पर पूर्ण शान्ति और तसल्ली के साथ कूच कर सकते हो। और इस महा अधोगति-प्राप्त देश के उभारने में खमीर की न्याईं काम दे सकते हो; और उस की सब से श्रेष्ट सेवा कर सकते हो। याद रक्खो, कि ऐसे सत्य और विज्ञान-मूलक धर्म्म और उसके प्रकाशक और विकासक के जानने और लाभ करने से बढ़कर क्या तुम्हारे और क्या किसी और योग्य मनुष्य के लिए कोई और अधिकार नहीं, और कोई और लाभ नहीं। और जो देव समाज इसी देव धर्म्म के साधन और प्रचार के लिए स्थापन हुई है, जिस ने मेरे खून से आज तक इतनी परवरिश पाई और उन्नति की है, उससे बढ़कर तुम्हारे और मनुष्य मात्र के लिए कोई और हितकर और उन्नति दायक समाज नहीं। इसलिए उस में प्रवेश करना, और उस में रहना अपना बहुत बड़ा अधिकार जानो और आज के इस विशेष दिन में अपने ऐसे अधिकार को विशेष रूप से सन्मुख लाकर यह जोरदार आकांक्षा करो, कि तुम्हारा आत्मा विनष्ट न हो, तुम्हें धर्म्म जीवन की प्राप्ति हो, और तुम्हें इस सत्य लक्ष्य की सफलता के लिए अपनी जिन २ नीच अनुराग और नीच घृणा-मूलक नाना शक्तियों के महा हानिकारक और विनाशकारी पंजे से निकलने की आवश्यकता है, उन से उद्धार पाने के लिए एक वीर पुरुष की तरह दृढ़ प्रतिज्ञा करो, और तुम्हें जिस देव आत्मा और देव समाज के साथ सम्बन्ध स्थापन करने

का अति पवित्र और अति श्रेष्ट अधिकार मिला है, उसके लिए वफ़ादार रहकर उनके कार्य्य की सफलता और उन्नति के लिए जहां तक सम्भव हो अपने तन अपने धन, अपनी धरती, और अपने मन आदि को समर्पण करने में केवल यही नहीं, कि कोई संकोच न करो, किन्तु ऐसा करने में हमेशा पूर्ण उत्साह और पूर्ण हर्ष प्रकाश करो, और औरों को भी यही शिक्षा दो, कि देव समाज में सब प्रकार के दान करने की जितनी महिमा और जितनी सफलता है, वह और किसी प्रकार से नहीं।

ऐसा हो, कि यह महोत्सव हम सब के लिए विशेष महोत्सव हो; ऐसा हो, कि यह विशेष महोत्सव देव धर्म्म के प्रचार और देव समाज की उन्नति के पथ में विशेष रूप से सहायकारी और एक नए युग का उत्पादक हो। इस आशीर्वाद के साथ मैं अपनी इस एड्रेस को अब समाप्त करता हूं।



